इकाई 35 स्वतंत्रता की ओर, 1945-1947

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य

यह इकाई भारतीय राष्ट्रवाद के एक अल्प किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण काल को रेखांकित करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ब्रिटिश शासकों और भारतीय जनता पर द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- इस काल में हुई विभिन्न राजनीतिक गतिविधियों के अंतर्संबंधों को समझ सकेंगे,
- इस काल में उठे जन संघर्षों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और अंग्रेज़ी शासन को कमज़ोर बनाने और अन्ततः उससे मुक्ति पाने में इन जन संघर्षों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हमने आपको विभिन्न संवैधानिक प्रक्रियाओं, राजनीतिक गतिविधियों के विस्तार और भारतीय समाज के कुछ वर्गों में राजनीतिक प्रौढ़ता आने की प्रक्रिया तथा अन्ततः द्वितीय विश्व युद्ध तथा उसके परिणामों से अवगत कराया। इन तमाम घटनाओं के फलस्वरूप 1940 तक राजनीतिक माहौल एकदम बदल चुका था, नये तनाव और टकराव उभरने लगे थे। शासकों और शासितों के बीच संबंध जो कि मूलतः टकरावपूर्ण थे, नये आयाम लेने लगे और आज़ादी की संभावना के मज़बूत होने के साथ-साथ राजनीतिक गतिविधियों का भी विस्तार होने लगा। एक ओर सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण के लिए बातचीत द्वारा समझौते के प्रयास किए जा रहे थे जिसे हम बंद कमरों में बातचीत की राजनीति कह सकते हैं, तथा दूसरी ओर बातचीत की पद्धति से असंतुष्ट जन आंदोलन भिन्न पद्धतियों की तलाश कर रहा था और इन पद्धतियों को उसने अंग्रेज़ों के साथ टकराव से पाया। यह बंद कमरों में बातचीत की राजनीति के विरुद्ध जनता की राजनीति थी। इस

काल के दौरान अलगाववादी राजनीति ने भी सिर उठाना शुरू कर दिया और पाकिस्तान के लिए आंदोलन तीव्र होने लगा।

इस प्रकार स्थिति बहुत जटिल थी। राजनीति की सभी विचार धाराएँ जैसे राष्ट्रवादी एवं सम्प्रदायवादी राजनीति, सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तातंरण के लिए प्रयत्नशील थी लेकिन जनसंघर्ष, प्रत्यक्ष अंग्रेज़ विरोधी टकराव, साथ ही साथ सामंती विरोधी संघर्ष अंग्रेज़ सत्ता को एक विभिन्न फ़लक पर चुनौती दे रहे थे। अगले पृष्ठों में 1945-1947 के दौरान भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की जटिलताओं तथा विभिन्न आयामों के संबंध में चर्चा की जाएगी।

35.2 पृष्ठभूमि : भारत एवं राज

1945-47 के वर्ष, पिछले कई दशकों की राजनीतिक घटनाओं के चरमोत्कर्ष के वर्ष थे। अतः इन निर्णायक वर्षों में घटने वाली घटनाओं की पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालना महत्वपूर्ण है। विशेषकर द्वितीय विश्व युद्ध तथा अंग्रेज़ सरकार एवं भारतीय जनमानस पर युद्ध के प्रभाव ने इनमें से कुछ घटनाओं के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। आइये देखें कि किस प्रकार युद्ध ने सरकार, उसकी नीतियों तथा भारतवासियों के विभिन्न वर्गों को प्रभावित किया।

35.2.1 द्वितीय विश्व युद्ध : भारतीयों पर इसका प्रभाव

1943 में "भारत छोड़ो आंदोलन के कमज़ोर पड़ने से लेकर 1945 में धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली और जापान) के पतन तक भारत का राजनीतिक माहौल प्रत्यक्षतः शांत था। लेकिन आंतरिक रूप में युद्ध जनित कष्टों के कारण आक्रोश बढ़ रहा था जिसे अंग्रेज़ी शासन अपने तमाम प्रयत्नों के बावजूद रोक नहीं पा रहा था। इस आक्रोश को शांत करने के लिए अंग्रेज़ी शासन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक ज़ोरदार ढंग से लोगों का ध्यान इस बिंदु से हटाने के लिए प्रयासरत् था।

इस जन आक्रोश का मुख्य कारण भारतीय उत्पादनों (कृषि एवं औद्योगिक दोनों ही) का सैन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भेजा जाना तथा भारतीयों के लिए ब्रिटेन से उपभोज्य वस्तुओं के आयात में गिरावट आने के कारण बढ़ने वाली महगाई थी। रक्षा व्यय में भारतीय योगदान का ब्रिटेन द्वारा भुगतान न किए जाने तथा ब्रिटेन पर भारत के बढ़ते हुए कर्ज़ के कारण स्थिति और भी गंभीर हो गयी। निम्न तालिका से रोज़मर्रा की आवश्यकता की चीज़ों पर बढ़ते हुए मूल्यों का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए अगर हम वर्ष 1939 में आधार मूल्य 100 मानें तो 1941 से 1944 के दौरान हुई वृद्धि निम्न आंकड़ों से प्रदर्शित होती है।

वर्ष	चावल	गेहूँ.	कपास उत्पादन	मिट्टी का तेल
1939	100	100	100	100
1941	172	212	196	140
1942	218	232	414	194
1944	333	381	285	175

सरकार ने जब "मूल्य नियंत्रण" का प्रयास किया, बाज़ार से वस्तुएँ गायब हो गयीं। बड़े पैमाने पर जमाखोरी होने लगी और ये वस्तुएँ काला बाज़ार में अत्यंत ऊँचे मूल्यों पर फिर से बिकने लगीं। इस प्रकार मित्र राष्ट्र की सेनाओं के लिए वस्तुओं की निरंतर आवश्यकता पूर्ति के कारण उत्पन्न वस्तुओं की सामान्य दुर्लभता के साथ-साथ कृत्रिम, असामान्य दुर्लभता भी उत्पन्न हो गयी। आवश्यक वस्तुएँ जनता को बाज़ार से आसानी से नहीं मिल पाती थीं और जब कभी ये वस्तुएँ बाज़ार में दिखती भी थीं तो आम आदमी में इन्हें खरीदने की क्षमता नहीं होती थी। जबकि "युद्ध के ठेकेदार" सैनिकों की आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई करने वाले, जमाखोर तथा "काला-बाज़ारी करने वाले" भरपूर कमाई कर रहे थे, दूसरी ओर आम उपभोक्ता और यहाँ तक कि उत्पादक और औद्योगिक मज़दूर अत्यंत

कष्टदायक जीवन व्यतीत करने पर मज़बूर थे। ऐसी भयावह आर्थिक स्थिति में यदि:

- मौसम की स्थिति प्रतिकूल हो और फसल खराब हो जाए,
- सरकार के लिए खाद्य सामग्री एकत्र करने वाले और सेनाओं को सप्लाई करने वाले अपने काम में घपला कर दें,
- सरकारी कर्मचारी खाद्य उत्पादनों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने में अनियमितता बरतें, और
- सैनिक किसी क्षेत्र में आक्रामक सेना के घुसने की आशंका से "घर फूँक" नीति अपना लें तो यह भयावह स्थिति अत्यंत गंभीर रूप धारण कर सकती थी।

इस अव्यवस्था के प्रभाव स्वरूप 1943 के उत्तरार्ध में बंगाल में अभूतपूर्व त्रासदी हुई। भयानक अकाल पड़ा। जिस पर "मानव निर्मित" होने अथवा लापरवाह अफसरशाही के परिणाम स्वरूप होने की शंका थी, इस अकाला ने तीस लाख से अधिक लोगों को भूख से मार दिया। यद्यपि शेष भारत अकाल की चपेट में नहीं था, फिर भी इसकी स्थिति बंगाल से बहुत बेहतर नहीं थी और गांवों एवं शहरों दोनों पर एक ही जैसी उदासी छाई हुई थी। स्पष्ट रूप से 1945 तक लोग कष्टों की चरम सीमा पर पहुँच गए थे और तथाकथित सर्वोपरि ब्रिटिश राज भी स्थिति को बदलने में असमर्थ था।

35.2.2 द्वितीय विश्व युद्ध : अंग्रेज़ सरकार पर इसका प्रभाव

विश्व युद्ध में शामिल ब्रिटेन भारतीय स्थिति से प्रभावपूर्ण ढंग से निपटने में समर्थ नहीं था। उसकी पूरी शक्ति युद्ध में लग रही थी और भारतीयों के कष्टों के प्रति ध्यान देने के लिए न उनके पास समय था और न ही रुचि। भारतीय प्रतिक्रिया पर ध्यान देने के लिए भी उनके पास समय अथवा रुचि नहीं थी। युद्ध समाप्त होने पर ब्रिटिश राज बिल्कुल थक चुका था और अपने भारतीय उपनिवेश को नए सिरे से सुव्यवस्थित करने में लगने के बजाय उसे विश्राम की आवश्यकता थी। परिस्थितियां बिल्कुल बदल चुकी थीं:

- इसके सशस्त्र बल के यूरोपीय सैनिक अनिश्चित काल तक भारत में रुके रहने के बजाय अपने घरों को जाने के लिए व्याकुल थे।
- अंग्रेज़ों की काफी बड़ी संख्या अपने सैनिक और व्यावसायिक भविष्य के लिए भारत को अब आदर्श स्थान नहीं मान रही थी और न ही उद्योग चलाने की दृष्टि से भारत को उचित स्थान माना जा रहा था।
- भारतीय प्रतिरोध की स्पष्ट परिस्थिति के सम्मुख भारत की अर्थव्यवस्था का ब्रिटेन के विश्व व्यापार के हितों में इस्तेमाल केवल एक ही तरीके से हो सकता था और वह यह कि सारे विरोधों को बलपूर्वक दबा दिया जाए।
- 1942 में अपने अस्तित्व के लिए ब्रिटेन ने जिस प्रकार शक्ति प्रयोग किया वह 1945 में युद्ध के अंत तक पुर्वानुमान के साथ बड़े पैमाने पर दुहराया जाना अत्यंत दुष्कर था। 1942 की भाँति क्षितिज पर उभर रहे एक और "भारत छोड़ो" आंदोलन को कुचलने के लिए ब्रिटिश राज न तो मानसिक रूप से तैयार था और न ही भौतिक रूप से। आर्थिक रूप से भारत अपने "शासन" के व्यय के लिए अब ब्रिटेन का ऋणी नहीं रह गया था। इसके विपरीत स्वयं ब्रिटेन पर भारत का 3,30,000 लाख पाउंड स्टर्लिंग का ऋण था।
- प्रशासनिक रूप से साम्राज्य का विख्यात "इस्पाती ढांचा", इंडियन सिविल सर्विस युद्ध के दौरान बिखर गया था।

मूल्य नियंत्रण, सप्लाई बनाये रखने, अकाल अथवा अकाल जैसी परिस्थितियों से निपटने, देश के अंदर दंगाइयों या अव्यवस्था फैलाने वालों से निपटने, हवाई हमलों की सूचना देने, ब्लैक आउट करवाने जैसे प्रशासनिक कार्यों का निर्वाह करते-करते दुखी और प्रशासनिक तथा न्यायिक कार्यों के प्रतिदिन बढ़ते बोझ से दबे सीमित संख्या में आई.सी.एस अफसरों की क्षमताएँ इतनी निचोड़ी जा रही थीं कि वे आगे गतिशील बने रहने के योग्य नहीं रह गये थे। यह समस्या और गंभीर हो गई जबकि अंग्रेज़ों के युद्ध में शामिल होने को सिविल सर्विस में भर्ती होने की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाने लगा और 1943 में जबकि युद्ध अपने चर्मोत्कर्ष पर था सिविल सर्विस में अंग्रेज़ों का प्रवेश लगभग बन्द हो गया। यद्यपि ब्रिटिश राज ने हिम्मत नहीं हारी थी लेकिन वे बहुत सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे थे क्योंकि 1940 के मध्य तक सिविल सर्विस में यूरोपीय अल्पसंख्यक (587) तथा भारतीय

बहुसंख्यक (614) थे और इस दृष्टि से तेज़ी से बदलते हुए महौल को देखते हुए सरकार सुरक्षित महसूस कर भी नहीं सकती थी। युद्ध की समाप्ति के साथ ही परंपरागत साम्राज्यवाद का भी अंत नज़र आने लगा था। उस समय भारत में वाइसरॉय के रूप में कार्यरत लार्ड वैवेल ने भारत में अंग्रेज़ों की स्थिति को इन शब्दों में विश्लेषित किया "भारत में हमारा समय सीमित है और परिस्थितियों को नियंत्रण में रखने की हमारी शक्ति लगभग समाप्त हो चुकी है"।

35.2.3 युद्ध का अंत : ब्रिटिश नीति

युद्ध के बाद स्पष्टतः एक महानगरीय राष्ट्र के लिए किसी उपनिवेश पर प्रत्यक्ष शासन करते हुए सुव्यवस्थित तरीके से सभी प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त करना संभव नहीं था तथापि द्वितीय विश्व युद्ध किसी भी रूप में साम्राज्यवाद को पतन की ओर नहीं ले गया बल्कि नए रूप में उसके पुनर्रुत्थान की संभावनाएँ पैदा कीं जिसे नव उपनिवेशवाद कहा जा सकता है।

कोई देश और उसके लोग अब भी प्रभावपूर्ण ढंग से औपनिवेशी कृत किए जा सकते थे। उन्हें राजनैतिक आज़ादी प्रदान कर देने के बाद भी वहां प्रभावहीन कठपुतली सरकारें बैठा कर उक्त देश एवं वहाँ के लोगों की एकता और अखंडता को तोड़कर उसे आर्थिक रूप से ग़ुलाम बनाया जा सकता था, उसकी सैन्य शक्ति का उपयोग किया जा सकता था।

ब्रिटेन अब नव उपनिवेशवादी पद्धति अपनाने के स्वप्न देख रहा था। और ऐसे तथ्य कि भारतीय राष्ट्रवादी, कठपुतली सरकारें बिठाने वालों के हाथों में खेलने को तैयार नहीं होंगे और स्वयं युद्ध से थके हुए तथा आंतरिक रूप से टूटे हुए ब्रिटेन के लिए पुनः विश्व बाज़ार पर प्रभुत्व बनाना संभव नहीं होगा, ब्रिटेन को ऐसे स्वप्न देखने से हतोत्साहित न कर सके। ब्रिटेन के पास अब इसके अतिरिक्त कोई विकल्प भी नहीं बचा था कि वह परिस्थितियों के बहाव के विरुद्ध भी आशा लगाकर बैठे और भारतीयों को किसी भी प्रकार से स्वतंत्रता के उनके लक्ष्य से पथभ्रष्ट कराकर और संभव हो तो उनमें फूट डालकर भारत में अपना भविष्य किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखें। इस योजना का आधार पहले ही तैयार किया जा चुका था अब केवल इसका सफलतापूर्वक क्रियान्वयन ही बाकी था।

एक युक्ति के रूप में भारत छोड़ने में अंग्रेज़ भारतीय जनमानस की भिन्नता को फूट का आधार बनाने में उतना ही प्रभावपूर्ण मान रहे थे जितना कि यह पद्धति सर्वत्र ब्रिटिश राज के फैलने में प्रभावपूर्ण रही थी। साम्राज्य ने भारतीयों के बीच की जिन तमाम विभिन्नताओं जैसे ब्रिटिश आधीन भारतीय जनता तथा रियासतों के आधीन जनता, "लड़ाकू तथा गैर लड़ाकू" जातियाँ, शहरी और ग्रामीण, ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण को उभारा और उनका इस्तेमाल किया, उनमें सबसे अधिक प्रभावशाली विभिन्नता दो सह अस्तित्व धर्मों हिन्दू और इस्लाम अथवा हिन्दू बहुसंख्यकों तथा मुस्लिम अल्पसंख्यकों की थी। अधिकतर महत्वपूर्ण जनसंबंधी मुद्दों पर ब्रिटिश राज ने बड़े चतुर ढंग से एक समुदाय को दूसरे समुदाय के विरुद्ध इस्तेमाल किया। राज ने इस प्रक्रिया में मुस्लिम लीग को मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि स्वीकार किया, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को "हिंदुओं की संस्था" के रूप में लांछित करके उसके राष्ट्रीय चरित्र के प्रति संदेह उत्पन्न किया। उन्होंने कांग्रेस को सशक्त राजनीतिक दल न बनने देने के प्रयास में मुस्लिम लीग का राजनीतिक शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया। युद्ध के आरंभिक चरण में जिस प्रकार ब्रिटिश राज ने लीग की पाकिस्तान की माँग की आड़ में कांग्रेस के साथ किसी प्रकार की संवैधानिक बातचीत करने से इंकार किया अथवा जिस प्रकार मुस्लिम लीग को अनैतिक रूप से उस समय कुछ प्रांतों में मंत्रिमंडल का गठन करने दिया गया जब कांग्रेस "भारत छोड़ो" आंदोलन के कारण विधान परिषदों के बाहर थी, तथा सरकारी संरक्षण की सहायता से मुसलमानों के बीच मुस्लिम लीग के प्रभाव क्षेत्र के विस्तार पर अधिकारियों ने जिस प्रकार कपटपूर्ण प्रसन्नता व्यक्त की, ये सभी उदाहरण स्पष्ट रूप से साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की प्रगति रोकने के लिए तैयार किए जा रहे षड्यंत्र की ओर इशारा करते हैं।

35.2.4 कांग्रेस और मुस्लिम लीग

राष्ट्रवादी नेतृत्व पाकिस्तान के आंदोलन को रोकने के लिए कोई गंभीर प्रयास न कर सके। साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिये उन्होंने उसकी उपेक्षा और निन्दा करते हुए लीग के सामंती तथा प्रतिगामी नेतृत्व की आलोचना करना ही काफ़ी समझा। परंतु यह प्रयास लीग के बढ़ते हुए प्रभाव को न रोक पाये क्योंकि :

- उन्होंने (कांग्रेस ने) मुस्लिम जनता से संपर्क करके उन्हें लीग के प्रभाव से हटा कर अपनी ओर आकृष्ट करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया।
- कांग्रेस द्वारा वन्दे मातृरम, रामराज्य आदि शब्दों और वाक्य खण्डों का प्रयोग किया जाता था। लीग इनका उदाहरण देकर मुसलमानों को कांग्रेस के विरुद्ध करने में लगी रहती थी।

राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण से सबसे हानिकारक यह नहीं था कि लीग को ब्रिटिश शासन से राजनीतिक संरक्षण मिल रहा था। यह संरक्षण अंग्रेज़ सरकार द्वारा लीग को विभिन्न प्रांतों में सरकार बनाने देने के रूप में था क्योंकि कांग्रेस में विधायिकाओं का बहिष्कार किया था (यह संरक्षण तो 1945 में उत्तर पश्चिमी प्रांतों और बंगाल में पूरी तरह और सिंध और आसाम में आंशिक रूप से समाप्त हो गया जब कांग्रेस ने विधायिकाओं में फिर से भाग लेने का निर्णय किया) कांग्रेस की वास्तविक चिंता तो यह थी कि लीग का यह प्रचार, कि पाकिस्तान बनने से मुसलमानों की सभी समस्याओं का अंत हो जायेगा, मुस्लिम जनता के बड़े वर्ग को आकृष्ट कर रहा था।

i) शिक्षित मुसलमान मध्यम वर्ग तथा मुसलमान व्यापारी भारतीय उपमहाद्वीप के एक हिस्से के अलगाव का स्वागत करने लगे क्योंकि उन्हें एक ऐसी जगह की आवश्यकता थी जहां उन्हें लम्बे समय से स्थापित हिन्दू व्यापारियों के साथ असमान प्रतिस्पर्धा न करनी पड़े।

ii) नौकरियों तथा व्यापार के क्षेत्र में मुस्लिम प्रभुत्व की इस संभावना के साथ पंजाब और बंगाल के मुस्लिम किसानों की यह आकांक्षा भी शामिल थी कि भावी पाकिस्तान में उन्हें "हिन्दू बनियों" और ज़मींदारों के शोषण से भी मुक्ति मिलेगी।

वास्तविक अथवा काल्पनिक, किसी न किसी रूप में मुस्लिमों के बीच लीग का समर्थन विस्तृत रूप ले रहा था जो कि कांग्रेस की पराजय थी। लीग के कर्ताधर्ता मुहम्मद अली जिन्ना ने अंग्रेज़ों के समर्थन के बल पर अवसर का लाभ उठाते हुए कांग्रेस के समक्ष निरंतर हठपूर्ण मांगों की प्रक्रिया आरंभ कर दी। जिन्ना की हठधर्मिता जुलाई 1944 में ही प्रत्यक्ष होकर सामने आ गयी थी जबकि उन्होंने कांग्रेस-लीग संबंध के गांधी जी के प्रयासों को विफल कर दिया और स्वतंत्रता की अखिल भारतीय मांग को कमज़ोर बनाने के ख़तरे की भी परवाह न करते हुए पाकिस्तान ने (जिसमें सिंध, पंजाब, बलूचिस्तान, उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत, बंगाल और असम मुस्लिम बाहुल्य प्रांत के सम्पूर्ण क्षेत्र शामिल थे) ने अपनी मांग छोड़ने से इंकार कर दिया। स्थिति ब्रिटिशों के हितों के अनुकूल थी। इस परिस्थिति से उन्हें अधिकतम लाभ युद्धोपरांत भारत में साम्राज्य का शासन बनाए रखने में हो सकता था और भारतीय साम्राज्य के टुकड़े करके अपने दूरगामी लाभ प्राप्त करने के द्वारा हो सकता था। सांप्रदायिक तनाव और पाकिस्तान का मुद्दा जनसाधारण के लिए चाहे जितना कष्टदायक एवं उनकी आशाओं ओर आकांक्षाओं को आघात पहुँचाने वाला रहा हो, 1945-1947 के दौरान भारतीय माहौल में ये मुद्दे सबसे महत्वपूर्ण रहे।

इन महत्वपूर्ण वर्षों की पूरी प्रक्रिया दो प्रत्यक्ष स्तरों पर चली :

i) कांग्रेस, लीग, और राज के बीच भारत के राजनीतिक भविष्य के प्रति समझौता करने के प्रयास के लिए उच्च स्तरीय राजनीति के स्तर पर।

ii) ब्रिटिश और उनके देशी सहयोगियों के विरुद्ध जनसाधारण के बीच प्रतिरोध की भावना के विस्तृत प्रदर्शन के लिए जन कार्रवाई के स्तर पर।

यद्यपि इन दोनों स्तरों का आपसी समायोजन शायद ही कभी हुआ हो, दोनों ने एक दूसरे को आकर्षित किया और विभाजन तथा स्वतंत्रता में फलीभूत होने वाले अगले तीन घटनापूर्ण वर्षों का इतिहास मिलकर तैयार किया।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाएँ :

i) विश्व युद्ध के उपरात विभिन्न वस्तुओं के मूल्य तेज़ी से बढ़े। ☐

ii) विश्व युद्ध के कारण अंग्रेज़ भारतीय राजनीतिक स्थिति से प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं निपट सके। ☐

iii) 1940 के बाद आई.सी.एस. (इंडियन सिविल सर्विस) में अंग्रेज़ अफसरों का अनुपात बढ़ गया। ☐

iv) अंग्रेज़ों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की दूरी कम करने का प्रयास किया। ☐

v) मुस्लिम व्यापारियों ने पाकिस्तान की मांग का समर्थन किया। ☐

vi) पंजाब और बंगाल में बनियों और ज़मीदारों ने मुस्लिम किसानों का शोषण किया। ☐

2 अंग्रेज़ों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता को किस प्रकार बढ़ावा दिया? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3 मुसलमानों के कुछ वर्गों ने पाकिस्तान की संभावना का स्वागत क्यों किया?

35.3 समझौते के प्रयास

1944 के अंत तक युद्ध में अंग्रेज़ों की स्थिति मज़बूत होने के साथ उन्हें यह आभास होने लगा था कि "भारत छोड़ो आंदोलन" के बाद भारतीय स्थिति जैसी थी उसे उसी रूप में नहीं रहने दिया जाना चाहिए। वे इस परिणाम पर पहुँच चुके थे कि भारत पर अपना आधिपत्य बलपूर्वक लंबे समय तक नहीं बनाए रखा जा सकता। अतः कैदी कांग्रेसी नेताओं से बातचीत का दौर आरंभ करना आवश्यक था जिससे कि यदि और कुछ नहीं तो भविष्य में युद्ध के बाद के आर्थिक संकटों तथा बेरोज़गारी से उत्पन्न होने वाली विस्फोटक परिस्थिति का फायदा उठाने से उन्हें (कांग्रेस को) रोका जा सके। लार्ड वैवेल का विचार था कि कांग्रेस तथा उसके सहयोगियों की सारी ऊर्जा आंदोलन के पथ से हटाकर "अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद दिशाओं जैसे भारत की प्रशासनिक समस्याओं से निपटने तथा संवैधानिक समस्याओं के समाधान के प्रयास में लगायी जाए।" चर्चिल और उनके सहयोगी इस विचार का तब तक विरोध करते रहे जब तक कि मई 1945 में जर्मनी के आत्मसमपर्ण के साथ युद्ध समाप्त होने की संपूर्ण संभावना नहीं बन गयी और ब्रिटेन में युद्ध काल की गठबंधन सरकार द्वारा नई चुनी हुई सरकार को सत्ता हस्तांतरित करने का समय नहीं आ गया।

35.3.1 शिमला कांफ्रेंस

अंततः ब्रिटेन स्थित उच्चाधिकारियों का अनुमोदन प्राप्त करके वाइसरॉय वैवेल ने बातचीत का दौर आरंभ किया। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्य 14 जून 1945 को रिहा कर दिए गए तथा अन्य लोगों विशेषकर लीगी नेताओं के साथ उन्हें शिमला में एक

कांफ्रेंस (24 जून-14 जुलाई, 1945) में आमंत्रित किया गया। इस कांफ्रेंस का प्रमुख उद्देश्य केन्द्र में एक ऐसी कार्यकारिणी परिषद का गठन किया जाना था जिसमें सेना अध्यक्ष तथा इस परिषद के अध्यक्ष के रूप में वाइसरॉय के अतिरिक्त सभी पदों पर भारतीय हो सकते थे,। इस परिषद में तथाकथित (ब्रिटिश और लीग दोनों द्वारा ही) "सवर्ण हिन्दू" तथा मुसलमानों का समान प्रतिनिधित्व होगा तथा परिषद अस्तित्वमान संवैधानिक तंत्र के तहत कार्य करेगी तथा विधान मण्डल के प्रति ज़िम्मेदार नहीं होगी। युद्ध के वास्तविक रूप में समाप्त हो जाने के बाद नए संविधान की संरचना पर भी विचार-विमर्श करने के लिए ब्रिटिश शासन अनमने ढंग से तैयार था। यद्यपि कांग्रेस ने कांफ्रेंस में हिस्सा लिया लेकिन स्वाभाविक रूप से "सवर्ण हिन्दू" निकाय के रूप में देखे जाने से इंकार कर दिया तथा अपने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी चरित्र को दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करते हुए मुसलमानों सहित किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों को कांग्रेस की ओर से नामज़द किए जाने के अधिकार की मांग की। अबुल कलाम आज़ाद और अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान शिमला कांफ्रेंस में कांग्रेस प्रतिनिधि मंडल के विशिष्ट सदस्य तथा कांग्रेस के नेता के रूप में शामिल हुए। लीग ने तर्क के बजाए हठ से काम लेते हुए समस्त भारतीय मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था होने का दावा किया तथा कांग्रेस की मांगों का विरोध करते हुए परिषद के तमाम मुस्लिम सदस्यों के चयन के सम्पूर्ण अधिकार की माँग की।

> इस माँग ने वाइसरॉय को भी शर्मिंदा कर दिया जिसके विचार में युनियनिस्ट मुस्लिमों अथवा लीग से समझौता किए बगैर पंजाब के सत्ताधारी मुस्लिमों का भी प्रतिनिधित्व आवश्यक था।

इससे असंतुष्ट होकर लीग ने इस मांग के द्वारा कि प्रस्तावित परिषद में मुस्लिम हितों से संबंधित यदि किसी निर्णय का विरोध मुस्लिम सदस्य (अथवा स्वयं लीग के नामज़द सदस्य) करते हैं तो उन्हें दो तिहाई बहुमत लेना होगा और इसके लिये सांप्रदायिक वीटो की माँग की। लीग के हठपूर्ण रवैये को प्रोत्साहित करने तथा परिषद में लीग के प्रवेश का अवसर बाद तक बनाए रखने के द्वारा, परिषद में प्रवेश के कांग्रेस के प्रस्ताव को नकार देने की अपनी उत्सुकता के कारण वाइसरॉय वैवेल ने ब्रिटिश प्रस्तावों को तत्काल वापस लेते हुए शिमला कांफ्रेंस भंग कर दी। इसके बाद की घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि वैवेल की कार्रवाई का अर्थ न केवल लीग को सारे मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में आधिकारिक तौर पर मान्यता देकर मुसलमानों की नज़र में उसे प्रतिष्ठित करना था बल्कि अप्रत्यक्षतः लीग का यह उत्साहवर्धन भी करना था कि जो चर्चा उसे अपने हित में न लगे उसे नकार देने का लीग को अधिकार है। इसके बाद किसी भी महत्वपूर्ण समझौते में लीग की संतुष्टि एक पूर्ण शर्त बन गयी।

14. शिमला में गांधी जी

35.3.2 लेबर पार्टी द्वारा सत्ता ग्रहण

जुलाई 1945 में आम चुनावों में अपनी भारी जीत के साथ ब्रिटिश लेबर पार्टी सत्ता में आई और भारतीय प्रश्न का जल्दी ही समाधान होने की आशाएं जगीं। भारतीय राष्ट्रवादी उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखने वाले दल के रूप में विख्यात, लेबर पार्टी ने पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि यदि वे सत्ता में आते हैं तो वे भारत को मुक्ति दिलायेंगे। दरअसल सत्ता में आने से काफ़ी समय पूर्व ही 24 जून, 1938 को लेबर पार्टी के नेता (जिसमें क्लेमेंट ऐटली, एनयूरिन बीवान, स्टेफोर्ड क्रिप्स तथा हैरल्ड लॉस्की शामिल थे) लंदन के निकट फिलकिन में जवाहरलाल नेहरू और वी.के. कृष्ण मेनन से मिले और यह वादा किया कि यदि लेबर पार्टी ब्रिटेन में सरकार बनाने में सफल हो जाती है तो भारत का भावी संविधान तैयार करने का अधिकार "व्यापक (सार्वभौम) मताधिकार" के आधार पर निर्वाचित भारतीय संविधान-सभा को होगा। उन्होंने यह भी माना था कि वे सत्ता भारतीयों को सौंपकर उन्हें आज़ादी देंगे। भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर लेबर पार्टी की नीति इतनी असंदिग्ध प्रतीत हो रही थी और साथ ही उनकी विजय इतनी सुस्पष्ट थी कि भारत में वाइसरॉय भी इस संभावना से चिंतित हो उठे कि ब्रिटेन के नए शासक कहीं तुरंत ही भारत का शासन अपने "कांग्रेस मित्रों" के हाथ में न सौंप दें। जो तथ्य वैवेल को पहले पता न था और बाद में उसे संतोषप्रद तथ्य के रूप में ज्ञात हुआ वह यह था कि सत्ता से बाहर रह कर लेबर पार्टी के नेतृत्व द्वारा किया गया वादा सत्ता में आने के बाद यथावत नहीं रहा। अपने वैचारिक मतभेदों के बावजूद यदि ब्रिटेन के प्रजातंत्रवादी और राजभक्त और यहां तक कि उदारवादी भारतीय साम्राज्य बनाए रखने के प्रति अपने रवैये में बहुत अधिक मतभेद नहीं रखते थे, तो लेबर पार्टी के लोग अपने समाजवादी झुकाव के बावजूद कंज़रवेटिव पार्टी, नौकरशाही और निहित स्वार्थों के साथ भारतीय साम्राज्य को समाप्त करने के सबसे लाभप्रद तरीके पर सहमत क्यों न होते? नियंत्रण शक्ति से बाहर किसी उपनिवेश को मुक्त करना किसी भी रूप में साम्राज्यवादी कार्य तो कहा नहीं जा सकता था, चाहे इस प्रक्रिया में वहां की जनता में फूट डालकर उन्हें इतना कमज़ोर बना दिया जाए कि स्वतः ही नव उपनिवेशवादी शोषण के लिए रास्ता खुल जाए। लेबर पार्टी को इसमें कोई विशेष हिचकिचाहट भी नहीं थी क्योंकि कनज़रवेटिव तथा ब्रिटिश अधिकारियों की भांति वे भी:

- संप्रदायवादियों को बल प्रदान करने,
- बल प्रयोग द्वारा जन संघर्षों को दबा देने,
- विदेशों में ब्रिटेन के हितों के विशेष रक्षक, तथा
- फ्रांसीसी एवं डच साम्राज्यवादियों को समर्थन देने के लिए क्रमशः भारत, चीन एवं जावा में ब्रिटिश भारतीय सेना की टुकड़ियां तैनात करने के लिए तत्पर थे।

अपनी नीति के अनुरूप, ऐटली सरकार ने भारत में जो सबसे पहला कदम उठाया वह कहीं से नया नहीं था और न ही उसमें कुछ ऐसी बात थी जो गैर-लेबर सरकार नहीं कर सकती थी। 21 अगस्त, 1945 को ऐटली सरकार ने वाइसरॉय को 1945-46 की सर्दियों में भारतीय विधान मण्डलों के नए चुनाव कराने का आदेश दिया। केन्द्र और प्रान्तों के लिए चुनाव न केवल लम्बे समय से होना बाकी थे (केन्द्र के लिए पिछला चुनाव 1934 तथा प्रांतों के लिए 1937 में हुआ था) बल्कि बातचीत आरंभ करने के नाम पर लक्ष्यविहीन तकरार का संवैधानिक खेल आरंभ करना भी आवश्यक था। 19 सितम्बर 1945 को पुनः वाइसरॉय ने भारत के लिए "शीघ्र पूर्ण उत्तरदायी सरकार" (आज़ादी शब्द को जानबूझ कर इस्तेमाल नहीं किया गया) देने का वचन दुहराया। इसके साथ ही निर्वाचित विधायकों तथा भारतीय रजवाड़ों के प्रतिनिधियों के साथ नए संवैधानिक प्रबंधों के लिए संविधान सभा के गठन पर चर्चा (जो कि लेबर पार्टी के पूर्व आश्वासन कि विधान सभा "व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित की जाएगी,के प्रतिकूल था) तथा वाइसरॉय की कार्यकारिणी परिषद, जिसमें मुख्य भारतीय राजनीतिक पार्टियों के प्रतिनिधि नामज़द होंगे उस के गठन के प्रयास का भी आश्वासन दिया गया। ऐटली सरकार की भारत के प्रति प्रतिक्रियावादी नीति को अधिक बेहतर ढंग से समझने और विश्लेषित करने वाला कोई अन्य नहीं, स्वयं पार्टी के विचारक हैरल्ड लॉस्की थे। 14 नवम्बर, 1945 को अपने एक भाषण में उन्होंने कहा : "ब्रिटेन की तमाम नीतियों में, चाहे वह गठबंधन सरकार (ऐटली के मातहत) की नीतियां ही हों, सही अर्थों में भारत को आज़ाद किए जाने के प्रति प्रतिबद्धता

नहीं दिखाई देती। भारत में सांप्रदायिक भेदभाव, जो कुछ तो वास्तविक है और कुछ काल्पनिक उस के आधार पर शोषण हो रहा है, जिसे कुछ तो हम बढ़ावा दे रहे हैं और कुछ स्थिति का फायदा उठाकर इसे आधार बनाकर हम शोषण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त भारत में रजवाड़ों के प्रति भक्तिभावना अत्यधिक बढ़े-चढ़े रूप में विद्यमान है और इस पावन उत्तरायित्व का वहम हमें करना है।''

35.3.3 चुनाव और कैबिनेट मिशन

1945-46 की सर्दियों में चुनाव हुए शिमला कांफ्रेंस की मनचाही असफलता तथा पाकिस्तान की मांग के आधार पर चुनाव होने तक लीग मुस्लिम मतदाताओं को आकृष्ट करने के लिए बेहतर स्थिति में थी। ''इस्लाम के ख़तरे में होने'' के धार्मिक नारे के साथ मुस्लिम व्यापारियों एवं मध्यम वर्ग के मुसलमानों की हुकूमत तथा अपने भविष्य के प्रति स्वयं निर्णय लेने के मुसलमानों के विशेषाधिकार के सपने को समाहित कर दिया गया। यद्यपि कांग्रेस, विशेषकर जनसाधारण के अंतर्गत आज़ादी प्राप्त होने के पूर्वानुमान के कारण, अपनी लोकप्रियता के चरमोत्कर्ष पर थी लेकिन धार्मिक कट्टरता के इस माहौल में वह अधिक संख्या में मुस्लिम वोट आकृष्ट करने की स्थिति में नहीं थी। चुनाव के परिणाम से विशेषतः कांग्रेस और लीग की स्थिति के संदर्भ में, यह सारी स्थिति स्पष्ट हो गयी। आम (गैर मुस्लिम) चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस को भारी सफलता प्राप्त हुई। 91.3 प्रतिशत मत लेकर केन्द्रीय विधान परिषद में उसने 102 स्थानों में से 57 स्थान प्राप्त किए तथा सिंध, पंजाब एवं बंगाल को छोड़कर अन्य सभी प्रांतों में उसे बहुमत मिला। कांग्रेस की यह अभूतपूर्व विजय भी उस प्रभाव के महत्व को कम नहीं कर सकी जो कि सरकार मुसलमानों को पहले ही दे चुकी थी। ब्रिटिश दृष्टिकोण तथा अंग्रेज़ों की अध्यक्षता में आगे चलने वाली चर्चाओं की दृष्टि से 1946 में कांग्रेस की भारी सफलता से भी अधिक महत्वपूर्ण, लीग द्वारा मुस्लिम मतदाताओं को किसी भी तरीके से, चाहे वह नैतिक हो अथवा अनैतिक, अपनी ओर आकृष्ट करना था। इस दृष्टि से मुस्लिम लीग ने काफ़ी महत्वपूर्ण सफलता अर्जित की थी। उसे 86.6 प्रतिशत मुस्लिम वोट प्राप्त हुए। केन्द्रीय विधान परिषद के सभी 30 स्थान उसे ही मिले तथा प्रांतों में कुल 509 मुस्लिम स्थानों में से 442 स्थान उसे प्राप्त हुए। इस सफलता के बावजूद भी लीग उन मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों में सफल न हो सकी जिन्हें वह पाकिस्तान में शामिल करने की मांग लेकर चल रही थी। उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांतों और असम में कांग्रेस के हाथों इसे पराजित होना पड़ा और पंजाब में यूनियनिस्ट मुस्लिमों को यह अपदस्थ न कर सकी। सिंध और बंगाल में भी जहां लीग ने अपने मंत्रिमंडल का गठन किया वहां वे सरकारी तथा यूरोपीय सहयोग के बल पर ही टिके हुए थे। वास्तविकता यह थी कि अविभाजित भारत में मुस्लिमों के बीच लीग के प्रति समर्थन की वास्तविक परीक्षा कभी हुई ही नहीं थी। चुनाव केवल पृथक निर्वाचक समूहों के आधार पर ही हुए थे, जो कि मुसलमानों को राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग रखने का प्रयास था, बल्कि मताधिकार भी बहुत सीमित (कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत) रखा गया था। यदि चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होते तो इसी प्रकार के 1952 में भारत में हुए चुनाव में कांग्रेस की सफलता तथा पूर्वी पाकिस्तान में 1954 में हुए चुनावों में लीग की असफलता तथा इसके तुरंत बाद पश्चिमी पाकिस्तान में स्थिति नियंत्रण में रख पाने में असफल रहने के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कठिन है कि इस चुनाव में क्या होता।

ब्रिटिश अनुमान के अनुरूप मुख्य राजनीतिक दलों द्वारा सीमित चुनावों में अपने-अपने रूप में सफलता प्राप्त करने के साथ ही ऐटली सरकार ने बगैर कोई समय नष्ट किए उनसे बातचीत का दौर आरंभ कर दिया। तीन ब्रिटिश कैबिनेट सदस्यों (भारत के लिए राज्य सचिव पेथिक लॉरेंस, व्यापार बोर्ड अध्यक्ष स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा नौ सेना के प्रमुख ए.वी. अलेक्ज़ेंडर) का एक उच्च स्तरीय मिशन भारत में समझौते द्वारा शांतिमय ढंग से सत्ता हस्तांतरण के तरीके ढूंढने भारत भेजा गया। जैसा कि ब्रिटिश अनुमान लगा चुके थे कि समय तेज़ी से उनके हाथ से निकल रहा था और मार्च 1946 तक सम्पूर्ण भारत में जन आक्रोश जन आंदोलन का रूप लेने लगा था। ब्रिटिश जिस स्थिति के लिए अधिक चिंतित थे वह यह संभावना थी कि कहीं लोगों के अन्दर की यह व्याकुलता देशव्यापी ''जन आंदोलन अथवा क्रांति'' का रूप न ले ले। ऐसी स्थिति पैदा करना कांग्रेस की शक्ति से बाहर नहीं था और ''जिसे नियंत्रित करना'', जैसा कि स्वयं वाइसरॉय का मानना था, ''ब्रिटिश के हाथ में नहीं रह गया था''। अतः जून 1946 में भारत के संवैधानिक भविष्य

को निर्धारित करने तथा अंतरिम सरकार पर निर्णय लेने के उद्देश्य से वाइसरॉय की सहायता से भारतीय नेताओं के साथ बातचीत के लिए कैबिनेट मिशन भारत आ पहुंचा।

सभी प्रकार के भारतीय नेताओं के साथ एक लम्बी बातचीत हुई। जिसमें समय-समय पर पाकिस्तान और मुसलमानों के अपने भाग्य का फैसला स्वयं करने के अधिकार के मुद्दे पर जिन्ना की हठधर्मी के कारण, व्यवधान पड़ता रहा। काफी वाद-विवाद के बाद मिशन ने इस परिस्थिति से निपटने के लिए एक जटिल किन्तु स्वीकार्य योजना प्रस्तुत की। यद्यपि वाइसरॉय तथा मिशन के एक अन्य सदस्य (अलेक्ज़ेंडर) जिन्ना के प्रति सहानुभूति रखते थे लेकिन मिशन, लीग की पूर्ण पाकिस्तान (जिसमें सभी मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों के सम्पूर्ण प्रदेश शामिल किए जाने की मांग थी) की मांग स्वीकार करने की स्थिति में नहीं था क्योंकि यदि सांप्रदायिक आधार पर अपने भविष्य का फैसला करने का अधिकार मुसलमानों को दिया जाता है तो यह अधिकार उन गैर-मुस्लिमों को भी देना होगा जो पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब तथा असम में बहुमत में हैं, इस आधार पर बंगाल, पंजाब तथा असम को विभाजित करना होगा जोकि सभी क्षेत्रीय तथा भाषायी संबंधों के विरुद्ध होगा, आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्याओं को चिरस्थायी बना देगा और इस पर भी संभव है कि लीग को मान्य न हो (क्योंकि जिन्ना अब "खंडित तथा सड़े गले पाकिस्तान" के स्वीकार करने के एकदम विरोधी बन चुके थे)। बड़े और छोटे पाकिस्तान की दोनों ही प्रकार की संकल्पनाओं को अस्वीकार करते हुए मिशन ने एक केन्द्र के अंतर्गत सभी भारतीय प्रदेशों के ढीले-ढाले संघ की योजना प्रस्तुत की जिसमें केवल रक्षा विभाग, विदेशी मामलों के विभाग तथा संचार विभाग ही संघ के नियंत्रण में होने थे, अन्य सभी विभाग विद्यमान प्रादेशिक विधान सभाओं के पास ही रहने थे। इसके उपरांत प्रादेशिक विधान सभाओं को विधान परिषद का चुनाव करना था जिसमें प्रदेश की जनसंख्या के हिसाब से प्रत्येक प्रदेश के लिए स्थान निश्चित किए जाने थे, यह स्थान विभिन्न समुदायों को प्रदेश में उनकी जनसंख्या के अनुपात के अनुसार दिए जाने थे। इस रूप में निर्वाचित सदस्यों को तीन खंडों में बांटा जाना था"। खंड ए को गैर मुस्लिम बाहुल्य प्रांत (बम्बई, संयुक्त प्रांत बिहार, केन्द्रीय प्रांत, उड़ीसा तथा मद्रास) के लिए होना था, खंड बी को उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों (सिंध, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों तथा पंजाब) तथा खंड सी को उत्तर-पूर्व (बंगाल एवं असम) के मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों के लिए होना था।

इन सभी खंडों को प्रादेशिक संविधान तैयार करने का अधिकार था। आवश्यकता पड़े तो वे सामूहिक संविधान तैयार कर सकते थे। यह खंड प्रादेशिक एवं खंडीय विधान सभाएं तथा कार्यकारिणी का भी गठन कर सकते थे। चूँकि इन दीर्घ आवधिक समाधानों में काफी समय लग सकता था इसलिए मिशन ने अल्प आवधिक समाधान भी प्रस्तावित किए जिसके तहत केन्द्र में तत्काल अंतरिम सरकार का गठन होना था जिसमें सभी मुख्य राजनैतिक दलों की सहभागिता होनी थी तथा सभी विभागों को भारतीयों के नियंत्रण में रहना था। मिशन का लक्ष्य पाकिस्तान योजना को अस्वीकार करके कांग्रेस को शान्त करना तथा कुछ निकटवर्ती मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों को लेकर स्वतंत्र मुस्लिम क्षेत्रों के गठन के द्वारा एक समझौता प्रस्तुत करना था। शुरू-शुरू में कांग्रेस और लीग दोनों ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। लेकिन शीघ्र ही प्रान्तों के समूहों अथवा खंडों के गठन के प्रावधानों को लेकर समस्या उठ खड़ी हुई। लीग का मानना था कि समूहबद्धता अनिवार्य होनी चाहिए क्योंकि लीग को यह सम्भावना नज़र आ रही थी कि इससे वह उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों (खंड बी) के कांग्रेस प्रशासित मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों तथा असम (खंड सी) को तोड़ कर (उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों तथा असम में अपने-अपने खंडों में कांग्रेस बहुमत अल्पमत में परिवर्तित हो जाएगा) अपने अन्दर शामिल करते हुए पूर्ण पाकिस्तान बना सकेगी। उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्तों तथा असम के खंड बी और सी में लाए जाने के उनके विरोध के कारण ही कांग्रेस समूहबद्धता को वैकल्पिक माने जाने पर बल दे रही थी। कांग्रेस प्रस्तावित विधान परिषद में रियासतों के निर्वाचित सदस्यों के लिए कोई प्रावधान न होने पर भी असंतुष्ट थी, यद्यपि कांग्रेस विधान परिषद के चुनाव के सीमित और अप्रत्यक्ष स्वरूप (जो कि ऐसे चुनावों में वयस्क मताधिकार की इसकी पूर्व की मांगों के विरुद्ध था)को स्वीकार करने के लिए तैयार थी। जुलाई 1946 के अन्त तक कांग्रेस और लीग ने कैबिनेट मिशन योजना पर निर्भर रहने के विरुद्ध निर्णय लिया। इसका मुख्य कारण समूह प्रणाली पर उनके मतभेद तथा कुछ हद तक मिशन का अपने आशयों को स्पष्ट न कर पाना था।

सांप्रदायिक आधार पर भिन्न स्वतंत्र इकाइयों के गठन, जोकि देश के "खंडित" होने (केवल भारतीयों में मतभेद के नाम पर) के आधार के रूप में आरंभ हुए थे, के साथ एक महत्वहीन केन्द्र के अंतर्गत अव्यवस्थित भारत स्थापित करने की अपनी व्याकुलता में मिशन सारी महत्वपूर्ण सूक्ष्मताओं पर ध्यान देने में सफल रहा। तथापि नवउपनिवेश-वादियों के लिए जगह बनाने की जल्दी में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन योजना से अधिक कुछ कर भी नहीं सकते थे। जुलाई 1946 के बाद तो उन्होंने एक कमज़ोर भारतीय संघ बनाए रखने की आवश्यकता पर भी गम्भीरतापूर्वक चर्चा नहीं की।

35.3.4 सांप्रदायिकता का ज्वार और अंतरिम सरकार

कैबिनेट मिशन योजना से पहुंचने वाले धक्के ने लीग को इतना व्याकुल बना दिया कि वह तुरंत "सीधी कार्रवाही" (Direct action) अथवा अपने चुनावोपरांत नारे "लड़के लेंगे पाकिस्तान" की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के ज़रिए स्थिति अपने पक्ष में करने के लिए तत्पर हो गयी। इसके परिणामस्वरूप सर्वप्रथम सीधी कार्रवाही दिवस (Direct action day) (16 अगस्त 1946) को सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए और प्रतिक्रिया की एक पूरी शृंखला के रूप में पूरे देश, विशेषकर, बम्बई, पूर्वी बंगाल और बिहार तथा यू.पी., पंजाब एवं उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांतों के कुछ भागों में फैल गए। कलकत्ता में लीग ने बंगाल के लीग अध्यक्ष सुहरावर्दी के प्रोत्साहन से 16 अगस्त को गैर मुस्लिमों पर अचानक बड़े पैमाने पर हमले शुरू कर दिए। इस अप्रत्याशित हमले से अपने ऊपर काबू पाते ही हिन्दुओं और सिक्खों ने भी हमले शुरू किये। शहर के बीचों बीच मौजूद सेना ने प्रतिक्रिया दिखाने में कोई जल्दबाज़ी नहीं की और जब तक सेना ने हस्तक्षेप किया, तब तक तीन दिन के अन्दर 4000 लोग मारे जा चुके थे और 10,000 से अधिक घायल हो चुके थे। सितम्बर 1946 में बम्बई में सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए लेकिन उतने बड़े पैमाने पर नहीं हुए जितने कलकत्ता में हुए थे फिर भी 300 से अधिक लोग इस दंगे में मारे गए। अक्तूबर 1946 में नोआखाली तथा तिपेरा में दंगे भड़के जिसमें 400 लोग मारे गए और बड़े पैमाने पर महिलाओं पर अत्याचार, लूट खसोट और आगज़नी हुई। नोआखाली का बिहार में तुरंत बदला लिया गया। अक्तूबर के अंत में लगभग 7000 लोगों को बर्बरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया गया यू.पी. भी इस नर संहार में पीछे नहीं रहा और केवल गढ़ मुक्तेश्वर में लगभग 10,000 लोगों का कत्ले आम हुआ। यू.पी. एवं बिहार के कत्लेआम की प्रतिक्रिया उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांतों (विशेषकर हज़ारा) में प्रत्याशित थी फलतः भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए और पंजाब विशेषकर लाहौर, अमृतसर, मुलतान अटक और रावलपिंडी के मुसलमान और हिन्दू इसकी भयंकर चपेट में आए तथा 1947 के मध्य तक लगभग 5000 लोग मारे गए। यह मात्र शुरुआत थी क्योंकि पूरे 1947 तथा 1948 के शुरू में सांप्रदायिक दंगे निरंतर चलते रहे जिसमें लाखों लोग मारे गए अथवा घायल हुए तथा महिलाओं के अपहरण एवं बलात्कार, निजी संपत्ति की भयंकर क्षति तथा धार्मिक स्थलों को अपवित्र करने की असंख्य घटनाएं हुईं। लाखों लोग इन दंगों के कारण शरणार्थी बन गए। इस प्रक्रिया में कुछ स्थानों पर (जैसे पंजाब) अत्यधिक बड़े पैमाने पर जनसंख्या विस्थापित हुई जबकि दूसरे स्थानों (जैसे बंगाल) पर विस्थापन की प्रक्रिया में काफ़ी लंबे समय तक लोग झुंड के रूप में अपने घरों को छोड़ कर जाते रहे। मानवीय कष्टों तथा अमानवीकरण की यह सीमा, देश के आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे का इस प्रकार पूर्णतः अस्त-व्यस्त होना, 1946 एवं 1948 के मध्य उप महाद्वीप में अपने ही संगे संबंधियों की निर्मम हत्या तथा इस काल के उपरांत भी ऐसी स्थिति का रह रहकर उठना विश्व सभ्यता के इतिहास में शायद ही इससे पूर्व कभी घटा हो।

ये सांप्रदायिक दंगे ठीक उसी समय बढ़ने शुरू हुए जिस समय अल्पावधि समाधान के रूप में कैबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तावित केन्द्र में अंतरिम सरकार सितम्बर 1946 को गठित की गयी। अंतरिम सरकार के गठन में वाइसरॉय को उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ा जो शिमला कांफ्रेंस के समय उठी थीं। जिन्ना ने इस प्रकार की सरकार में एक सिख एवं एक अनुसूचित जाति सदस्य के अतिरिक्त कांग्रेस एवं लीग के क्रमशः 5 हिन्दू और 5 मुस्लिम नामज़द सदस्यों के रूप में बराबरी के प्रतिनिधित्व की मांग की, जैसा कि अपेक्षित था। कांग्रेस ने इस प्रकार के बराबरी के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तथा साथ ही यह मांग उठाई कि कांग्रेस को अधिकार होना चाहिए कि नामज़दगी की अपनी सूची में हिन्दू, मुस्लिम और अन्य किसी भी समुदाय के सदस्यों को किसी भी अनुपात में शामिल करे तथा

नई सरकार वाइसरॉय की सलाहकार समिति के बजाए एक कैबिनेट के रूप में कार्य करें। वैवेल ने जून 1945 में शिमला कांफ्रेंस की भांति ही इस आधार पर अपने प्रयास रोक दिये होते कि यदि मुख्य राजनैतिक दलों में मतभेद बने रहे तो किसी प्रकार की सफलता अर्जित नहीं की जा सकती, लेकिन भारत में कैबिनेट मिशन आने के तुरंत पहले और तुरंत बाद विस्तृत पैमाने पर हुई जन कार्रवाई के रूप में मिली सख्त चेतावनी ने उसे ऐसा न करने दिया (देखें भाग 10)। कुछ ही समय पूर्व हुए नौ सेना विद्रोह, और डाक और रेल कर्मचारियों की हड़ताल से उत्पन्न आशांति एवं अव्यवस्था से बाध्य होकर ही वैवेल ने, यद्यपि थोड़े समय के लिए ही, भारतीय जन समुदाय के बीच सबसे प्रभावशाली दल, कांग्रेस के साथ अंतरिम सरकार बनाई। वैवेल का मानना था कि यदि कांग्रेस सत्ता संभालती है तो वे स्वयं महसूस करेंगे कि अराजक तत्वों पर पूर्ण नियंत्रण आवश्यक है। संभव है कि वे कम्युनिस्टों को भी दबा दें और स्वयं अपने अन्दर के वाम पक्ष को भी सर्वथा समाप्त कर दें। वैवेल यह भी आशा कर रहा था कि "कांग्रेस के नेता प्रशासन में इतने व्यस्त हो जाएंगे कि राजनीति के लिए उनके पास बहुत कम समय बचेगा।" (वैवेल द्वारा भारत सचिव को लिखा गया पत्र, 31 जुलाई, 1946)। लीग के विरुद्ध प्राथमिकता दिये जाने के वाइसरॉय के कदम से प्रफुल्लित तथा अंतरिम सरकार के गठन को हितकर एवं सत्ता के शांति पूर्ण हस्तांतरण की दिशा में एक प्रगति के रूप में देखते हुए कांग्रेस ने 2 सितम्बर को जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कैबिनेट के गठन का निश्चय किया। लेकिन परिस्थितियां कुछ इस प्रकार सामने आयीं कि कांग्रेस की अंतरिम सरकार दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में पहुंच गयी, अपनी तमाम चिंताओं के बावजूद कांग्रेस को सांप्रदायिक दंगों के ज्वार के समक्ष असहाय होकर ब्रिटिश सेनाध्यक्ष के मातहत दंगा ग्रस्त क्षेत्रों में सेना भेजनी पड़ी। वाइसरॉय की अध्यक्षता में अंतरिम सरकार कभी-कभी वाइसरॉय के वीटों का भी प्रतिकार नहीं कर पाती थी। अंतरिम सरकार की स्थिति तब और खराब हो गयी जबकि वैवेल ने लीग को उनके सीधी कार्रवाई पर बने रहने के बावजूद तथा कांग्रेस द्वारा एक राष्ट्रवादी मुस्लिम सदस्य के मनोनीत किए जाने के बदले लीग द्वारा अनुसूचित जाति सदस्य मनोनीत किए जाने पर सहमत होकर 26 अक्तूबर 1946 को सरकार में शामिल होने पर राज़ी कर लिया। तदोपरांत अंतरिम सरकार लीग और कांग्रेस खेमों में बंट गयी तथा नौकरशाही के अंतर्गत दोनों खेमों के समर्थकों के आपसी टकराव एवं लीग के सदस्य की अंतरिम सरकार की गतिविधियों में व्यवधान डालने की नीति के कारण सरकार का अस्तित्व केवल नाम मात्र को ही रह गया। किसी देश की केन्द्रीय सरकार में ऐसा विभाजन तथा मुख्य समुदायों के बीच ऐसी कटुता को देखते हुए देश की एकता तथा उसकी स्वतंत्रता की आशा धूमिल हो रही थी। कांग्रेस के अग्रणी नेता 1947 तक वाद-विवाद, सांप्रदायिक दंगों और झगड़ों से तंग आकर किसी भी प्रकार की आशा छोड़ बैठे थे। वे अब इस भयावह परिस्थिति से किसी भी कीमत पर बाहर आना चाहते थे यहां तक कि वे अपने राष्ट्रवादी सपनों को भी दांव पर लगाते हुए देश के विभाजन की कीमत पर भी आजादी खरीदने को तैयार थे।

उनके समक्ष निम्न विकल्प रह गए थे ;

- नाम मात्र की अन्तरिम सरकार में काम करने से इंकार कर देना,
- जन साधारण के बीच भाई चारे की भावना के लिए लोगों से अपील करना,
- दंगाइयों को उकसाने वालों का पर्दाफाश करना
- मुस्लिम और हिन्दू दोनों ही सम्प्रदायवादियों के विरुद्ध लोगों को संगठित करने का प्रयास करना, तथा
- साथ ही साथ अंतिम साम्राज्यवाद विरोधी जन आंदोलन शुरू करना तथा जनता में एकता लाने का प्रयास करना।

यद्यपि विकल्प की प्राप्ति में काफ़ी समय लग सकता था तथा इसका रास्ता अत्यंत जोखिमपूर्ण एवं दुष्कर था तथापि उनके लिए जो जनता की शक्ति एवं निर्णायक भागीदारी में विश्वास रखते थे, यह असंभव कार्य नहीं था।

बोध प्रश्न 2

1 निम्न वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (X) का निशान लगाएँ।

i) शिमला कांफ्रेंस इसलिए असफल रही क्योंकि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करना चाहती थी। ☐

ii) कैबिनेट मिशन ने अंतरिम-सरकार के प्रस्ताव को नामंज़ूर कर दिया। ☐

iii) लीग की सीधी कार्रवाई (Direct action) के कारण काफ़ी बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए। ☐

iv) अंतरिम सरकार में मुस्लिम लीग के शामिल होने के बाद अंतरिम सरकार की गतिविधियों में सुधार हुआ। ☐

2 अंग्रेज़ों ने समझौते के प्रयास क्यों किए? दस पंक्तियों में लिखें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3 इंग्लैंड में लेबर पार्टी की विजय का भारतीय राजनीतिक परिस्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा। पांच पंक्तियों में लिखें।

....
....
....
....
....
....

35.4 जन आंदोलन

1945 और 1947 के बीच आम रुझान की लाक्षणिक अभिव्यक्ति मुख्यतः दो रूपों में हुई

1 औपनिवेशिक प्रशासन के साथ सीधे टकराव के रूप में

2 औपनिवेशिक प्रशासन के भारतीय समर्थकों, जिनमें कुछ पूंजीपति और रजवाड़े तथा अधिकतर ज़मींदार और महाजन मुख्य थे, का विरोध करते हुए अप्रत्यक्ष रूप में औपनिवेशिक प्रशासन के टकराव के रूप में।

इन दोनों ही रुझानों के अंतर्गत घटने वाली घटनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि केवल मुख्य घटनाओं पर ही चर्चा कर पाना संभव है।

35.4.1 प्रत्यक्ष टकराव

हम यहां औपनिवेशिक प्रशासन के साथ हुए कुछ मुख्य प्रत्यक्ष टकरावों की चर्चा करेंगे।

1. आज़ाद हिन्द फ़ौज पर चलाया गया मुकद्मा (आई.एन.ए. ट्रायल्स)

टकराव की शुरुआत आज़ाद हिन्द फ़ौज के कैदी अफसरों पर मुकद्मा चलाए जाने से हुई (आज़ाद हिन्द फ़ौज की भूमिका के संबंध में आप इकाई 34 में पढ़ चुके हैं) नवम्बर 1945 में मुकद्में की शुरुआत होने तक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा उनकी आज़ाद हिन्द फ़ौज के कारनामे भारतीय जनता को पता चल चुके थे तथा उन पर इसका काफ़ी प्रभाव भी पड़ा था। आज़ाद हिन्द फ़ौज के तीन अफसरों (शहनवाज़ ख़ान, गुरबख्श सिंह ढिल्लों तथा प्रेम कुमार सहगल) जो कि मुस्लिम, सिख और हिन्दू सम्प्रदाय से संबंधित थे और जन एकता का प्रतीक थे, को दिल्ली के लाल किले में अदालती कटघरे में खड़ा करने पर देशव्यापी विरोध की अग्नि फैल गयी। जगह-जगह पर सभाएं और जुलूस आयोजित किए गए, रोषपूर्ण भाषण दिए गए तथा हर संभव तरीके से विरोध की अभिव्यक्ति की गयी और इन कैदियों को तुरंत छोडे जाने की मांग की गयी।

NEW AUSTIN CARS

The Hindustan Times

LARGEST CIRCULATION IN NORTHERN, NORTH-WESTERN & CENTRAL INDIA — DELHI EDITION

VOL. XXII NO. 305 — NEW DELHI: TUESDAY, NOVEMBER 6, 1945 — PRICE 1½ ANNAS

I.N.A. TRIAL OPENS IN RED FORT

WOMEN WARRIORS — SHAH NAWAZ — DHILLON — SAHGAL — DEFENCE COUNSEL

OF GUN BATTLES IN BATAVIA

WARN ANNAMITES OF REPRISALS

BRITISH DOCK STRIKE ENDS

CHARGES OF MURDER AND WAGING WAR AGAINST KING

DEFENCE ASKS FOR THREE WEEKS' ADJOURNMENT

(By Our Special Representative)

NEW DELHI, Monday.—A trial unprecedented in British Indian history, whose significance was heightened by the fact that Pandit Jawaharlal Nehru donned after about 25 years

Syria A Potential Trouble Spot In Mid-East

Curfew On Road Traffic ... In Palestine

15. आज़ाद हिन्द के सिपाहियों पर मुकद्में की अखबार में रिपोर्ट

इस प्रक्रिया में कलकत्ता की घटनाएं शेष स्थानों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण रहीं। पूरा शहर आन्दोलित हो उठा। 21 नवम्बर, 1945 को फारवर्ड ब्लाक के आह्वान पर छात्रों ने डलहौज़ी स्क्वायर पर प्रशासनिक आवासों की ओर मार्च किया, रास्ते में ही इस मार्च में स्टूडेंट फेडरेशन (कम्युनिस्ट पार्टी की छात्र इकाई) तथा लीग स्टूडेंट आर्गेनाइज़ेशन के सदस्य भी शामिल हो गए। इन छात्रों ने साम्राज्यवाद विरोधी जन एकता की आवश्यकता दर्शाने के लिए कांग्रेस मुस्लिम लीग तथा लाल झंडे को एक साथ फहराया। धरमतला स्ट्रीट पर सशस्त्र पुलिस ने इन छात्रों को रात भर रोके रखा और अगले दिन उन पर गोली चला दी जिसमें एक हिन्दू और एक मुसलमान छात्र मारा गया। इस गोली कांड से पूरे शहर में आक्रोश फैल गया। कलकत्ता की जनता ने शहर में हलचल मचा दी। यातायात ठप्प हो गया। कारों और लारियों में आग लगा दी गयी और सड़कों पर नाकेबंदी कर दी गयी। सिख टैक्सी ड्राइवरों, ट्राम कर्मचारियों और फैक्ट्री मज़दूरों ने काम रोक दिया। 22 और 23 नवम्बर को पूरे दो दिन तक उत्तेजित जन समूह पुलिस से टकराते रहे। उन पर गोलियां चलीं और जो शस्त्र उन्हें मिल सके उनसे इन जन समूहों ने भी पुलिस पर हमले बोले। 24 नवंबर, 1945 को अंग्रेज़ अव्यवस्था पर काबू पाने में सफल हो सके। लेकिन तब तक पुलिस 14 मौकों पर गोली चला चुकी थी, 33 जानें जा चुकी थीं तथा सैंकड़ों नागरिक, पुलिस वाले और सैनिक घायल हो चुके थे एवं लगभग 150 पुलिस और सैनिक वाहन नष्ट हो चुके थे।

आज़ाद हिन्द फ़ौज़ के प्रश्न पर पूरे देश विशेषकर कलकत्ता में हुआ संघर्ष व्यर्थ नहीं गया। अधिकारियों को इन संघर्षों के समक्ष झुकना पड़ा। दिसम्बर 1945 में उन्होंने घोषणा

की कि आज़ाद हिन्द फ़ौज के केवल उन्ही सदस्यों पर मुकदमा चलाया जाएगा जिनके विरुद्ध हत्या एवं बर्बरता का अभियोग है तथा इसके तुरंत बाद जनवरी 1946 में कैदियों के प्रथम समूह के विरुद्ध दिया गया फैसला वापस ले लिया गया। आरंभिक दौर में उपेक्षा का रवैया दिखाने के बाद सरकार ने फौरन आज़ाद हिन्द फ़ौज के संघर्ष के महत्व एवं भारतीय राष्ट्रवाद के साथ उसके संबंध को पहचानने में देर नहीं लगायी। अब सरकार ने यह समझ लिया था कि यह संघर्ष सांप्रदायिकता की भावना से परे हैं और इससे जुड़ी हुई नागरिक अशांति राज के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। अप्रत्याशित रूप में भारतीय जन प्रतिनिधि चाहे वे राष्ट्रवादी हो अथवा सांप्रदायवादी जन संघर्ष के इस रूप की गम्भीरता समझाने में असफल रहे जबकि ब्रिटिश उसकी गम्भीरता समझा रहे थे। इन नेताओं ने जन आंदोलनों को केवल पुलिस के साथ व्यर्थ झड़पों में ऊर्जा नष्ट करने के रूप में लिया। जनता के सामूहिक उत्साह के ज्वार के विरुद्ध कांग्रेस की कार्यकारी समिति ने 7-11 दिसम्बर 1945 की अपनी एक बैठक में जनसाधारण को अहिंसा का रास्ता अपनाने की आवश्यकता का स्मरण दिलाया। कांग्रेस और लीग का जन संघर्ष के प्रति इस प्रकार का रवैया होने के पीछे दो ही कारण हो सकते थे ब्रिटिश राज के साथ समझौते के पक्ष में पूर्ण प्रतिबद्धता अथवा अंतिम चरण तक संघर्ष के बजाए राजनैतिक फायदा उठाने की नीयत से आज़ाद हिन्द फौज़ के प्रश्न अथवा इस तरह के किसी भी मुद्दे पर समर्थन देने के लिए तभी तैयार हो सकते थे जब उन्हें आगामी चुनावों में इससे लाभ होता नज़र आता, इससे अतिरिक्त उन्हें इसमें रुचि नहीं थी, उदाहरण के लिए पंजाब मे चुनाव के दौरान कांग्रेस ने आश्वासन दिया कि आजाद हिन्द फ़ौज के सभी फ़ौजी आज़ाद भारत की सेना में भर्ती कर लिए जायेंगे। मानसिक रूप से इस समय कांग्रेस ने 90 प्रतिशत भारतीयों की उत्कंठाओं की उपेक्षा करते हुए 10 प्रतिशत भारतीयों की चुनावी राजनीति को महत्व दिया।
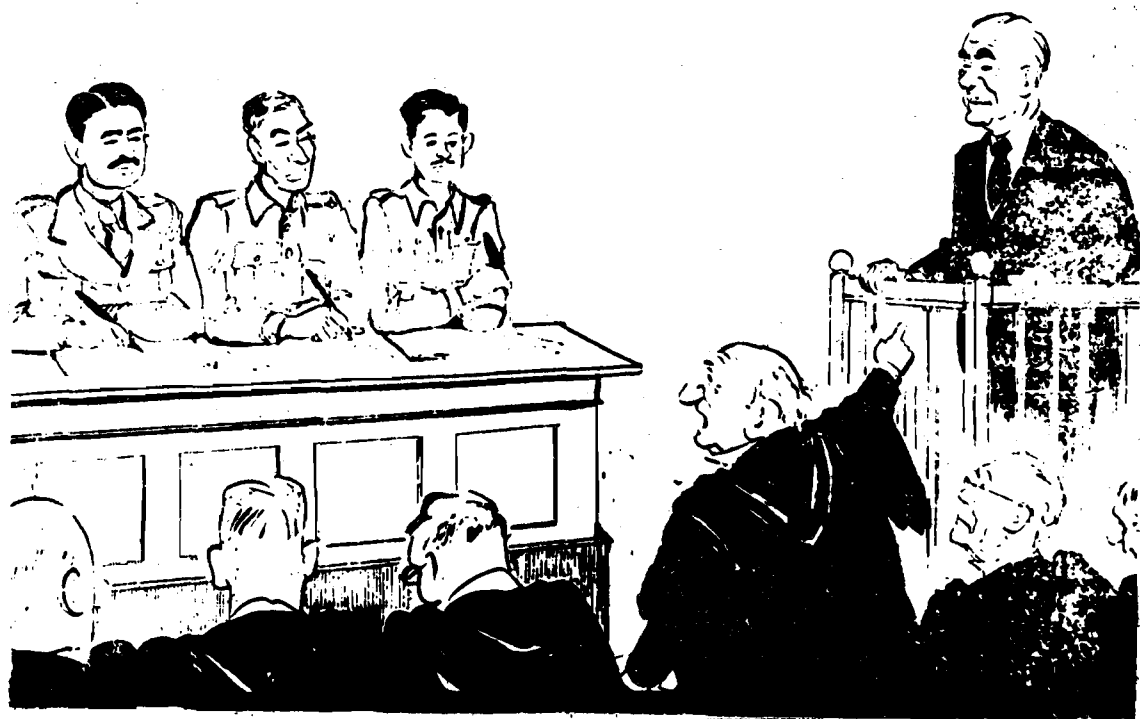
16. आज़ाद हिंद फ़ौज के मुकदमे का कार्टून

आज़ाद हिन्द फ़ौज़ का संघर्ष 1945 के अंत तक ही समाप्त नहीं हो गया। फरवरी 1946 में कलकत्ता के अन्दर ही यह संघर्ष फिर शुरू हुआ। आज़ाद हिन्द फ़ौज के राशिद अली को सात साल की कैद की सज़ा के विरुद्ध विरोध प्रकट करने के लिए लीगी छात्रों ने 11 फरवरी 1946 को हड़ताल का आह्वान किया। कम्युनिस्टों की स्टूडेंट फैडरेशन समेत अन्य छात्र संगठन भी उत्साह पूर्वक बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के एक जुटता के साथ इस हड़ताल में शामिल हो गए। इस विरोध प्रदर्शन ने उस समय भयंकर लड़ाई का रूप ले लिया जब युवा मज़दूर वर्ग भी इसमें शामिल हो गया। 12 फ़रवरी को एक विशाल रैली (जिसमें लीग, राष्ट्रवादी एवं कम्युनिस्ट वक्ताओं ने रैली को संबोधित किया) तथा आम हड़ताल हुई और कलकत्ता तथा इसके औद्योगिक उपनगर में जन-जीवन अस्त

व्यस्त हो गया। परिणामतः पुलिस और सेना के साथ झड़पें हुईं, जगह-जगह पर नाकेबंदी हुई तथा सड़कों पर कई स्थानों पर रह-रह कर भिड़त होती रही। दो दिनों तक यह मार काट का सिलसिला चला जिसमें 84 लोग मारे गए और 300 घायल हुए अंततः दो दिन बाद अधिकारी गण "व्यवस्था" पर काबू पाने में सफल हुए। तथापि इसका तनाव न केवल कलकत्ता एवं बंगाल में बल्कि देश के अन्य हिस्सों में भी बना रहा।

Amrita Bazar Patrika

78th YEAR OF PUBLICATION

Editor — TUSHAR KANTI GHOSH

RATINGS SEIZE 20 SHIPS & ARMOURY

KARACHI STRIKE SERIOUS

Heavy Gunfire And Shelling Resumed

H. M. I. S. HINDUSTAN SURRENDERS: PARATROOPS OCCUPYING VESSEL

Bombay & Karachi Happenings

C. ASSEMBLY'S CONCERN

BRISK EXCHANGE OF SHOTS WITH BRITISH MILITARY IN BOMBAY

Air And Naval Reinforcements Being Rushed To Areas Of Unrest

British Prime Minister Announces Royal Navy Vessels Proceeding To Bombay

BOMBAY, Feb. 21.

The strike of R. I. N. ratings in Bombay as well as in Karachi has turned into open mutiny. The unrest is likely to spread rapidly to other places like Calcutta and Madras. The authorities are obviously perturbed. It is announced by the General Headquarters at Delhi that strong naval, military and air reinforcements are on their way to Bombay, Poona and Karachi.

The British Prime Minister Clement Attlee announced in the House of Commons today that certain vessels of the Royal Navy are proceeding towards Bombay. Mr. Attlee said he had no more information about the mutiny in R. I. N. but had telegraphed urgently to India and hoped to make as full a statement as possible tomorrow.

In the Bombay Harbour twenty ships including the flag ship 'Narbada' are in the hands of the 'mutineers'.

The striking ratings had taken possession of the armoury inside the Castle Barracks and had captured considerable quantity of ammunition. In their attempt they were resisted by the British military police and free exchange of shots ensued.

At about 5-30 P.M. firing had ceased on both sides as a result of a truce brought about by a 'Peace Mission'.

BOMBAY OBSERVES HARTAL

Police Open Fire A Number Of Times On Crowds

CITY'S TRAFFIC PARALYSED: HEAVY CASUALTIES FEARED

R.I.N. STRIKE IN CALCUTTA

Situation Unchanged: Further Demands Put Forward

MADRAS RATINGS STAGE SYMPATHY DEMONSTRATION

Naval Ratings' Strike Spreads To Delhi

17. शाही भारतीय नौ सेना विद्रोह की अखबार में रिर्पोट

II शाही भारतीय नौसेना विद्रोह (RIN Revolt) फ़रवरी 1946 में कलकत्ता में संघर्ष के दूसरे दौर के तुरंत बाद ही विश्व युद्ध के बाद का संभवतः सबसे सीधा और भयंकर साम्राज्य विरोधी टकराव प्रस्फुटित हुआ और वह था शाही भारतीय नौ सेना (रॉयल इण्डियन नेवी) का विद्रोह। ये नौ सैनिक जिन्होंने देश से बाहर कार्य करते हुए बाहर की दुनिया देखी थी और तौर तरीकों से परिचित थे, अपने अंग्रेज़ अधिकारियों के नस्लवादी बर्ताव से असंतुष्ट थे। इसके अतिरिक्त जनसाधारण से सामान्यतः अलग-थलग रखे जाने के बावजूद वे देश में व्याप्त अशांति और विशेषकर आज़ाद हिन्द फ़ौज के मुकद्में के प्रति पूर्णतः सजग थे। उनके अन्दर बढ़ रहा क्रोध अचानक उस भोजन को लेकर निकल पड़ा जो उन्हें दिया जाता था। 18 फ़रवरी, 1946 को बम्बई बंदरगाह में नौ सैनिक प्रशिक्षण पोत 'तलवार' पर नाविक ख़राब भोजन एवं नस्लवादी बर्ताव के विरोध में भूख हड़ताल पर बैठ गए अगले दिन उस क्षेत्र में लंगर डाले 22 अन्य जहाज़ इस हड़ताल में शामिल हो गए और तुरंत ही यह विरोध प्रदर्शन समुद्र तट पर कैसल एवं फोर्ट की बैरेकों तक फैल गया।

हड़तालियों ने कांग्रेस, लीग और कम्युनिस्ट झंडे बुलंद किए।

हड़तालियों ने एम. एस. ख़ान के नेतृत्व में नौ सेना केन्द्रीय समिति का गठन किया और अपनी मांगे तैयार की जिसमें राष्ट्रीय मांगे उतनी ही थी जितनी कि स्वयं उनकी विशिष्ट मांगे। ये मांगे थी:

- सभी आज़ाद हिन्द फ़ौज कैदियों की रिहाई
- अन्य सभी राजनीतिक कैदियों की रिहाई
- हिन्द चीन और जावा से भारतीय सैन्य टुकड़ियों की वापसी
- बेहतर भोजन

* सभ्य बर्ताव, और
* भारतीय और यूरोपीय नाविकों को बराबर वेतन।
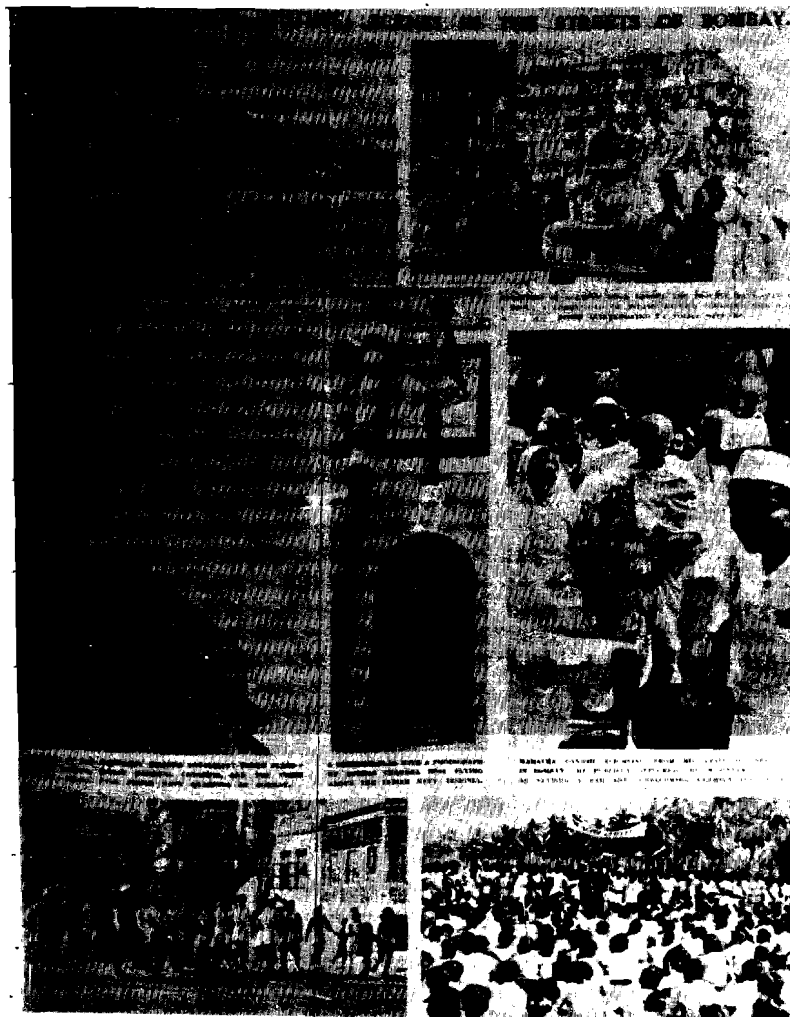
18. बम्बई में भारतीय नौ सेना विद्रोह का एक दृश्य

बीस फ़रवरी को बैरेक में हड़तालियों को सशस्त्र रक्षकों ने घेर लिया जबकि जहाज़ के अन्दर हड़तालियों के साथियों को ब्रिटिश बम वर्षक हवाई जहाज़ से उन्हें नष्ट कर दिये जाने की चेतावनी मिलती रही। लड़ाई अगले दिन तब शुरू हुई जब बैरक में छिपे भारतीय नाविकों ने बाहर निकलने की कोशिश की और कुछ जहाज़ों के भारतीय नाविकों ने (भारतीय नाविकों ने जहाज़ों को यूरोपीय अधिकारियों से अपने कब्ज़े में ले लिया था) आत्मसमर्पण के बजाए बन्दूक उठाने का निर्णय लिया। कराची में भी "हिन्दुस्तान" के विद्रोहियों के नेतृत्व में साहसिक लड़ाइयां लड़ी गयीं। 22 फरवरी तक 78 जहाज़ों, 20 बंदरगाहों तथा 20,000 भारतीय नौ सेनिकों समेत विद्रोह देश के तमाम अड्डों तक फैल गया।

1946 के क्रांतिकारी माहौल में विद्रोहियों को स्वाभाविक रूप से अभूतपूर्व जन समर्थन प्राप्त हुआ। कराची में हिन्दू और मुस्लिम छात्रों एवं मज़दूरों ने भारतीय नाविकों के समर्थन में प्रदर्शन किए और सेना तथा पुलिस से लड़ाइयां लड़ीं। बम्बई में भी नाविकों के प्रति आम सहानुभूति की भावना फैल गयी। लोग उनके लिए भोजन सामग्री पहुंचाते तथा दुकानदार उनसे निवेदन करते कि उन्हें जो भी पसंद आए वे ले जाएं। 22 फ़रवरी को कम्युनिस्टों ने कांग्रेस सोशलिस्टों के सहयोग से आम हड़ताल का आह्वान किया। इस दिन 300,000 मज़दूर कांग्रेस एवं लीग के निर्देशों की उपेक्षा करते हुए मिलें और फैक्ट्रियां छोड़कर सड़कों पर आ गए। इसके उपरांत बम्बई की वही हालत हो गयी जो कलकत्ता की थी। चारों और संघर्ष का माहौल था, नाकेबंदी, झड़पें हुई किंतु बम्बई में कलकत्ता से

अधिक दुखद स्थिति हुई और साथ ही यहां इस संघर्ष का केन्द्र बिन्दु मज़दूर वर्ग रहा। दो दिनों के भयंकर संघर्ष में कई सौ लोगों की जानें गयीं और हज़ारों लोग घायल हुए लेकिन बम्बई का यह संघर्ष आगे नहीं बढ़ पाया जिसके दो कारण थे।

i) ब्रिटिश राज ने इस संघर्ष को दबाने में अपनी सैन्य शक्ति का भरपूर प्रयोग किया।

ii) 23 फ़रवरी को वल्लभ भाई पटेल और जिन्ना ने संयुक्त रूप से भारतीय नाविकों से आत्मसमर्पण कराने का प्रयास किया। कांग्रेस और लीग ने यह वचन दिया कि वे भारतीय नाविकों के प्रति किसी प्रकार का भेद-भाव बरते जाने पर रोक लगायेंगे। लेकिन शीघ्र ही इस वचन को भुला दिया गया।

इस प्रकार शाही नौ सेना विद्रोह का अंत हुआ।

III अन्य

आजाद हिन्द फौज और शाही नौ सेना के संघर्षों के साथ-साथ इसी प्रकार के और भी प्रत्यक्ष साम्राज्यवाद विरोधी टकराव चलते रहे, यद्यपि वे इतने व्यापक एवं महत्वपूर्ण नहीं थे। इनमें से कुछ इस प्रकार थे।

- नागरिकों की राशन सप्लाई में कटौती के सरकारी फैसले के विरुद्ध जन आक्रोश जिसमें फ़रवरी 1946 के मध्य में इलाहाबाद के अन्दर 80,000 लोगों ने प्रदर्शन किया।
- अप्रैल 1946 में पुलिस की व्यापक हड़ताल जो वामपंथियों के नेतृत्व में मालावार, बिहार, पूर्वी बंगाल (विशेषकर ढाका), अडंमान और यहां तक कि दिल्ली में भी हुई।
- जुलाई 1946 में डाक कर्मचारियों ने अधिकारियों के निर्देशों का उल्लंघन करने का निर्णय लिया और एक बिन्दु पर सचमुच सारे काम ठप्प कर दिए। उनके प्रति सहानुभूति एवं कम्युनिस्टों के आह्वान पर 29 जुलाई 1946 को कलकत्ता में शांतिपूर्ण ढंग से हड़ताल की गयी।
- जुलाई 1946 में अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारियों द्वारा हड़ताल की धमकी दिए जाने पर पूरे देश में उत्तेजना की लहर दौड़ गयी।

दरअसल 1946 में हड़ताल एवं औद्योगिक कार्रवाई रोज़मर्रा के कार्य बन चुके थे।

35.4.2 अप्रत्यक्ष टकराव

1946 में हड़तालों की लहर ने न केवल अधिकारियों के लिए बल्कि यूरोपीय एवं भारतीय दोनों स्थानों के पूंजीपतियों एवं जंग के ठेकेदारों के लिए भी समस्या खड़ी कर दी थी पिछले तमाम रिकार्डों को पीछे छोड़ते हुए 1946 की हड़तालों में 1, 629 बार काम ठप्प हुआ, 1,941, 948 मज़दूर प्रभावित हुए तथा 12,717,762 मानवीय श्रम के दिनों का नुकसान हुआ। बुनियादी तौर पर अपनी आर्थिक मांगों पर केन्द्रित इन हड़तालों ने चारों ओर प्रतिरोध एवं आत्मविश्वास की भावना जागृत कर दी तथा धर्म निरपेक्ष एवं सामूहिक कार्रवाई के लिए अधिकतर शहरों एवं उपनगरों में एक माहौल तैयार कर दिया। जहां एक ओर शहरी क्षेत्रों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध व्यापक विमुक्ति आंदोलन की संभावना प्रबल प्रतीत हो रही थी वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी संभावना शहरों से भी अधिक प्रबल बन चुकी थी और यहां 1945 और 1947 के दौरान चौंका देने वाली घटनाएं घटित हो रही थीं। किसान, विशेषकर निर्धन किसान जिस प्रकार अपने भारतीय शोषकों के विरुद्ध उठ खड़े हुए और इस प्रक्रिया में उन्होंने अपने औपनिवेशिक मालिकों को कमज़ोर बनाना शुरू कर दिया, इसकी स्पष्ट व्याख्या के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की घटनाओं को संक्षिप्त रूप में रेखांकित करने की आवश्यकता है।

वर्ली संघर्ष

युद्धोपरांत किसान आंदोलनों में सबसे व्यापक और पहले संघर्षों में से एक बम्बई के थाना जिले में वर्ली का संघर्ष था। वर्ली आदिवासी थाना जिले के उम्बेर गांव, दनानू, पालधार और जवाहर ताल्लुकों के गांवों के बहुसंख्यक किसान थे। निर्धनता के कारण उनकी अधिकतर ज़मीन ज़मींदारों और महाजनों के अधिकार में चली गई क्योंकि वे ऋण (जो कि

सामान्यतः अनाज के रूप में होता था।) का भुगतान नहीं कर सके थे जो कि उन्होंने अत्यंत उच्च ब्याज दर (पचास से दो सौ प्रतिशत) पर लिया था। उनमें से अधिकतर कच्चे काश्तकार के स्तर पर पहुंच गए थे और उन ज़मीनों पर जो पहले उनके अधिकार में थी, अनाज के आधे उत्पादन की ज़मींदारों और महाजनों की अदायगी करके काश्तकारी कर रहे थे। अन्य आदिवासियों को भूमिहीन खेतिहर मज़दूर बनकर ज़मींदारों को खेती योग्य ज़मीन पर काम करने पर मज़बूर होना पड़ा। कठिनाई के समय में वे महाजनों और ज़मींदारों से **खावती** अथवा अनाज के रूप में ऋण लेते रहे और भुगतान न कर पाने की स्थिति में ज़मींदार अथवा महाजन के लिए बिना किसी वेतन अथवा भुगतान के मजदूरी (वेथ-बेगार) करते थे। इस प्रक्रिया में बहुत से वर्ली, चाहे वे कच्चे काश्तकार हों अथवा भूमिहीन मज़दूर, व्यावहारिक रूप में जीवन भर के लिए बंधुआ बन गए। 1945 में पहली बार महाराष्ट्र किसान सभा ने वर्लियों को संगठित किया और गोदावरी पुरूलेकर जैसे बाहरी नेताओं के नेतृत्व में वर्लियों ने **वेथ-बेगार** करने से मना कर दिया। 1945 की शरद ऋतु में वर्ली मज़दूरों ने घास काटने की मज़दूरी में वृद्धि की मांग की और काम रोक दिया। ज़मींदारों ने गुण्डों और पुलिस की मदद से उन्हें आतंकित करने का प्रयास किया। दस अक्तूबर 1945 को लालवाड़ा में हड़तालियों की एक सभा पर पुलिस ने गोली भी चला दी जिसमें पांच लोग मारे गए और कई घायल हुए। लेकिन इस बर्बरता से वर्लियों का उत्साह कम होने के बजाय बढ़ गया और कुछ समय बाद ज़मींदारों को बढ़ी हुई दरों पर मज़दूरी देने की मांग माननी पड़ी। 1946 में वर्लियों का संघर्ष जंगल में कार्यरत मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने को लेकर चलता रहा यह मज़दूर जंगल के ठेकेदारों के लिए पेड़ काटने और लकड़ी के लठ्ठों को एकत्र करने का काम करते थे। 1946 की शरद ऋतु में उन्होंने महीनों काम रोके रखा और स्थानीय सरकार (जिसका नेतृत्व कांग्रेस मंत्रिमंडल कर रहा था) के दमन की परवाह न करते हुए महाराष्ट्र टिम्बर मर्चेन्ट्स एसोसियेशन को मज़दूरी में वृद्धि करने पर मज़बूर करने में सफलता प्राप्त की। उनकी इस सफलता ने स्थानीय सरकार को इतना उत्तेजित कर दिया कि सरकार ने प्रतिशोध की भावना से भरकर वर्ली नेताओं के विरुद्ध अभियान चला दिया। भारी संख्या में उनके कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार किए गए और उनके विरुद्ध अपराधिक अभियोग लगाए गए। 7 जनवरी 1947 को सबसे भयंकर घटना घटी जबकि पालधार ताल्लुक में पुलिस द्वारा गोली चलाने से पांच किसानों की मृत्यु हो गई। इसके बाद वर्ली आंदोलन धीरे-धीरे निष्क्रिय हो गया, यद्यपि कुछ आंदोलनकारी जिन्होंने जंगलों में शरण ली थी, स्वयं को संगठित करने का प्रयास करते रहे।

बकाश्त किसान संघर्ष

वर्लियों के संघर्ष की तुलना में 1946-47 के दौरान बिहार में हुआ बकाश्त किसान संघर्ष अधिक व्यापक और निश्चित रूप से अधिक व्यग्र था। यह संघर्ष लगभग एक दशक के समय में धीरे-धीरे सीधे ज़मींदारों द्वारा प्रबंधित बकाश्त ज़मीन के मुद्दे पर खड़ा हुआ। काश्तकारों के साथ मिलकर खेती की जाने वाली **रैयती** ज़मीन तथा स्वयं अपने लिये रखी गयी **ज़िसती** ज़मीन जिस पर खेतिहर मज़दूर काम करते थे, के अतिरिक्त ज़मींदार बकाश्त ज़मीन को कच्चे काश्तकारों को किराए की विभिन्न दरों पर दे देते थे। चूंकि बकाश्त किसानों के पास कोई वैधानिक अधिकार न था इसलिए वे कभी भी ज़मीन से बेदखल कर दिए जाते थे, सामान्यतः ज़मींदार बेदखली इसलिये कराते थे क्योंकि हर नये असामी को न केवल उच्च दर के हिसाब से किराया देना होता था बल्कि उससे ज़मींदारों को नयी सलामी भी प्राप्त होती थी। इसके अतिरिक्त वे इस निरंतर बेदखली द्वारा किसानों को काश्तकारी कानून (1885 का काश्तकारी कानून जिसके तहत यदि बकाश्त काश्तकार निरंतर 12 वर्ष तक किसी ज़मीन पर बना रहा है और किराए का भुगतान करता है तो उसे दखलकार असामी के कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं) की परिधि से बाहर रख सकते थे, 1930 के दशक में जबकि सरकार ने असहाय बकाश्त किसानों को कुछ काश्तकारी अधिकार देने का विचार किया तो अचानक बेदखली की प्रक्रिया ने द्रुत गति पकड़ ली। यद्यपि सरकार (जो कि कांग्रेस की थी और ज़मीदारों के साथ अपनी मित्रता के लिए जानी जाती थी) के इस विचार में गंभीरता नहीं थी लेकिन ज़मीदार किसी प्रकार का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे अतः वे बड़े पैमाने पर बेदखली करते रहे। किसान सभा के झंडे तले किसान 1937 से 1939 तक ज़मीदार के एजेंटों, सरकारी अधिकारियों एवं पुलिस के विरुद्ध जमकर संघर्ष करते रहे। यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होते ही कुछ समय के लिए यह संघर्ष रुक गया और अस्थिर तथा अविश्वसनीय समझौते के द्वारा किसी प्रकार शांति

थोप दी गई लेकिन 1946 में यह मुद्दा उस समय फिर उठ खड़ा हुआ जब कांग्रेस ने बिहार में चुनाव लड़ा और ज़मींदारी व्यवस्था समाप्त करने का आश्वासन देना शुरू किया। अपनी ज़मींदारी समाप्त होने की संभावना को देखते हुए ज़मींदारों ने सोचा कि यदि वे सभी काश्तकारों से बकाशत ज़मीन ले लें और उन्हें ज़िरात में बदल सकें तो कम से कम वे अपनी निजी ज़मीन बचा ले जाएंगे। स्वाभाविक रूप से बकाशत किसानों ने बेदखली के प्रयास का जमकर विरोध किया और 1946 की गर्मियों तक मुंगेर, गया और शाहाबाद जिलों में एक साथ संघर्ष फिर से शुरू हो गया। फर्जी रिकार्डों पर आधारित कोर्ट के फ़ैसले के साथ अपने लठैतों को लेकर ज़मींदार काश्तकारों को बकाश्त ज़मीन से बेदखल करने निकल पड़े। किसान सभा के नेतृत्व में काश्तकारों ने इसका प्रतिरोध करते हुए सत्याग्रह किया और हिंसात्मक टकराव पर उतर आये। इस प्रक्रिया में लूट एवं आगजनी की घटनाएं हुईं, लोग मारे गए और घायल हुए, गिरफ्तारियां हुईं और शीघ्र ही आंदोलन दरभंगा, मधुबनी, मुज़फ़्फ़रपुर, और भागलपुर में भी फैल गया। यह टकराव कटाई के मौसम में और भी बढ़ गया जबकि उन्हें अपनी उस फसल को ज़मींदारों से बचाना पड़ा जो उन्होंने पहले ही उगा रखी थी। इस संघर्ष में महिलाएँ और बच्चे भी शामिल हो गए और ज़मींदारों के आदमियों के आक्रमण को रोकने के लिए किसान कार्यकर्त्ता दल तैयार किए गए। बिहार बकाश्त विवाद समझौता ऐक्ट 1947 के रूप में सरकार का इस टकराव को समाप्त करने का अनमना प्रयास इस संघर्ष पर कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ पाया तथा संघर्ष तब तक चलता रहा जब तक कि कांग्रेस मंत्रिमंडल ने मज़बूर होकर बिहार ज़मींदारी उन्मूलन ऐक्ट, 1948 पारित नहीं किया।

ट्रैवनकोर संघर्ष

महाराष्ट्र और बिहार की घटनाओं के विपरीत दक्षिण में ट्रैवनकोर रियासत में इस प्रकार का संघर्ष न तो पूर्णतः ग्रामीण था और न ही पूर्ण रूप से खेतिहर मुद्दों पर केन्द्रित था। तथापि खेतिहर मुद्दों (जेन्मी अथवा ज़मींदारों द्वारा आर्थिक शोषण और सामाजिक दमन) और खेतिहर वर्गों (जैसे शोषित और दमित गरीब किसान, ग्रामीण दस्तकार और खेतिहर मज़दूर) की ट्रैवनकोर में 1946 में हुई घटनाओं में काफी बड़ी भूमिका रही। घटनाओं का केन्द्र उत्तर पश्चिमी ट्रैवनकोर का शेरतलाई अलेपी क्षेत्र रहा जहां कम्युनिस्टों के नेतृत्व में एक मज़बूत ट्रेड यूनियन के रूप में खेतिहर आंदोलन शुरू हुआ। आंदोलन गांवों और छोटे नगरों में फैलता चला गया और इस क्षेत्रों के गरीब किसान, खेतिहर मज़दूर, मछुआरे, ताड़ी उतारने वाले, दमित खेतिहर किसान वर्ग से आए तथा जीविका कमाने के लिए शहरों में फैल गए। कोयर फैक्ट्री मज़दूर भी इस आंदोलन में शामिल हो गए। कोयर फैक्ट्री मज़दूरों ने अपनी ट्रेड यूनियन के माध्यम से न केवल कुछ आर्थिक लाभ प्राप्त कर लिए थे बल्कि कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण रियायतें भी प्राप्त कर लीं जैसे फैक्ट्रियों में भर्ती में अपनी राय देने का अधिकार और अपनी निजी राशन की दुकान चलाने का अधिकार। राजनीतिक रूप से जागरूक इन मज़दूरों और इनके कम्युनिस्ट नेतृत्व ने उस अमरीकी पद्धति के संविधान के विरुद्ध व्यापक अभियान चलाया जो कि रियासत का दीवान सी.पी. रामास्वामी अय्यर रियासत के लोगों पर थोपना चाहता.था। इस संविधान के जरिए रामास्वामी अय्यर और महाराजा एक ऐसी तैयारी कर रहे थे जिसके तहत वे उस समय स्वतंत्र ट्रैवनकोर रियासत की स्थापना कर सकें जबकि यह आभास होने लगे कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाएंगे। साथ ही ट्रैवनकोर में महाराजा द्वारा नियुक्त किए गए दीवान की निगरानी में व्यापक मताधिकार के आधार पर विधान सभा निर्वाचित करके (यद्यपि विधान सभा का कार्यकारिणी पर कोई प्रभावशाली नियंत्रण नहीं होना था) एक गैर उत्तरदायी सरकार का गठन करने का उद्देश्य भी इस संविधान में छिपा हुआ था। इस योज़ना के विरोध से कम्युनिस्टों की प्रतिक्रिया ने रियासती अधिकारियों को इतना क्रुद्ध कर दिया कि उन्होंने एलेपी क्षेत्र में अपने विरोधियों पर आंतक का चक्र चलाना शुरू कर दिया। पुलिस कैम्प लगा दिए गए और मनमानी गिरफ़्तारियों एवं यातना का दौर शुरू हो गया। इस दमन चक्र के कारण मज़दूरों को अपने ही कार्यकर्त्ता दलों द्वारा संरक्षित स्थानों में शरण लेनी पड़ी। रियासत के दमन के विरुद्ध उन्होंने 22 अक्तूबर को एलेपी शेरतलाई क्षेत्र में आम हड़ताल का आह्वान किया तथा एलेपी के निकट पुनापरा में पुलिस चौकी पर आक्रमण करके संघर्ष की नींव रख दी। अधिकारियों ने तुरंत ही 25 अक्तूबर को मार्शल लॉ की घोषणा कर दी और 27 अक्तूबर को सेना को शेरतलाई के निकट वयालर में मज़दूरों के सुरक्षित ठिकाने पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इसके बाद जो अमानवीय नरसंहार हुआ उसमें 800 से

अधिक लोग मार गए। इन शहादतों ने न केवल रियासत के स्वतंत्र रहने की इच्छा के विरुद्ध जनमत तैयार करते हुए रियासत के राष्ट्रवादी भारत में शामिल होने का रास्ता तैयार कर दिया बल्कि सामंत विरोधी स्थानीय मानसिकता भी तैयार कर दी।

तेभागा आंदोलन

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का सबसे व्यापक खेतिहर आंदोलन तेभागा आंदोलन था जो बंगाल के 19 ज़िलों में फैला और साठ लाख किसान (जिसमें मुस्लिम किसान भारी संख्या में थे) इस आंदोलन के सहभागी बने। संघर्ष का सूत्रपात उस बटाईदारी व्यवस्था से हुआ जो बंगाल के अधिकतर हिस्सों में प्रचिलित था और शोषण का आधार बनी हुई थी। ग्रामीण बंगाल में, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां बड़े-बड़े पर्वती, दलदली एवं जंगली भूमि के टुकड़ों पर खेती शुरू की जा रही थी, ज़मींदारों एवं रैयत के बीच अपेक्षाकृत नया ग्रामीण शोषक वर्ग उभरा जिसे जोतेदार कहा जाता था। जोतेदारों ने अच्छी खासी मिलकियत खड़ी कर ली थी जिसके लिए वे नकद किराया अदा करते थे और भूमिहीन मज़दूर को अपनी ओर से अधियार (आधी फसल ले लेना) की व्यवस्था के आधार पर किराए पर उठा देते थे। लेकिन व्यवहार में काश्तकार को फसल के आधे से कहीं कम हिस्सा मिल पाता था क्योंकि उसे हल बैल और बीज आदि प्राप्त करने के लिए जोतेदार से धन लेना पड़ता था जो कि बटाई के समय उसे वापस करना पड़ता था। अधियार अथवा भागचाशी को फसल के अपने हिस्से में से ही जोतदार की अन्य गैर कानूनी मांगों, जैसे नज़राना (भेंट) और सलामी (जो एक प्रकार की लेवी थी) को पूरा करना पड़ता था तथा जोतदार की निजी ज़मीन पर बेगार करना पड़ता था। चूंकि बटाईदारी व्यवस्था में प्रति वर्ष किसी लिखा पढ़ी के बगैर शाब्दिक रूप से बटाईदारी का नवीनीकरण होता था इसलिए जोतदार नए सिरे से नज़राने और सलामी के लिए प्रति वर्ष पुराने बटाईदार को बेदखल कर सकते थे, जैसा कि वे प्रति वर्ष करते ही थे। बटाईदार व्यवस्था का उपयोग केवल जोतदार ही नहीं करते थे बल्कि वे ज़मींदार भी करते थे जो गांवों के बजाए शहरों में रहते थे और नौकरियां करते थे। 1930 के दशक में बटाईदारों की संख्या काफ़ी बढ़ गयी क्योंकि इस दौरान के आर्थिक संकट में गरीब किसानों की ज़मीनें उनके कब्ज़े से जाती रहीं और उन्हें बटाईदारी का सहारा लेना पड़ा। अगले पांच वर्षों के अन्दर ही 1940 के दशक की शुरुआत में युद्ध के समय की महंगाई की परिस्थिति से बटाईदार काफी प्रभावित हुए। साथ ही भयावह अकाल ने इस परिस्थिति को और भी नाजुक बना दिया। बटाईदार यह महसूस करने लगे कि फसल की परंपरागत् बटाईदारी उनकी जीविका के लिए एकदम काफ़ी नहीं है और वे निरंतर नुकसान उठा रहे हैं। अतः जब सितम्बर 1946 में बंगाल प्रादेशिक किसान सभा ने काश्तकारों के लिए आधे के बजाए तीन चौथाई हिस्से की मांग करते हुए किसानों का आह्वान किया तो उन्हें मांग के साथ जुड़ने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। "तेभागा चाई" (तीन चौथाई हिस्सा चाहिए) के नारे से आकाश गूंज उठा और बटाईदार फसल को जोतदारों के पास ले जाने के बजाए (जैसे कि वे करते आए थे) अपने खलिहानों में ले जाने लगे। उन्होंने तीन चौथाई हिस्सा अपने पास रखते हुए एक चौथाई जोतदारों को देने की पेशकश की। ऐसी परिस्थिति में जहां जोतदार फसल अपने खलिहानों में उठा ले जाने में सफल हो सके थे, वहां बटाईदारों ने बलपूर्वक अपना तीन चौथाई हिस्सा ले लिया। फसल और अनाज पर अधिकार के सवाल पर कई स्थानों पर जोतदारों ओर बटाईदारों में झड़पें हुईं। सशस्त्र पुलिस ने इन स्थानों पर पहुंचकर गिरफ़्तारियां कीं, लाठी चार्ज किए तथा गोलियां चलाईं। पूरे उत्तरी बंगाल में संघर्ष की लहर दौड़ गयी जिसमें जलपाईगुड़ी, दीनाजपुर और रंगपुर की भूमिका अग्रणी रही। मैमन सिंह, मेदनीपुर और 24 परगना भी पीछे नहीं रहे। कलकत्ता और नोआखाली में सांप्रदायिक दंगों के बावजूद मुस्लिम किसानों ने इसमें सक्रिय भाग लिया और आंदोलन को कई योग्य नेता दिए, किसान महिलाएं भी भारी संख्या में आंदोलन में शामिल हुईं और प्रायः आंदोलन का नेतृत्व भी संभाला। तथापि सरकार के दमन, कांग्रेस और लीग की उदासीनता तथा किराए पर ज़मीन उठाने वाले बंगाली मध्यम वर्ग के कारण और इन सबसे महत्वपूर्ण बिगड़ती हुई साम्प्रदायिक स्थिति के कारण यह आंदोलन बिखर गया। मार्च 1947 के अंत में कलकत्ता में दुबारा दंगों की शुरुआत तथा इसके परिणाम ने अंततः आंदोलनकारियों को आंदोलन स्थगित करने पर मज़बूर कर दिया।

तेलंगाना आंदोलन

यद्यपि तेलंगाना आंदोलन शुरू में तेभागा आंदोलन की तरह व्यापक नहीं था लेकिन हैदराबाद रियासत के तेलगू भाषी तेलंगाना क्षेत्र का यह आदोलन अपने प्रकार के सभी आंदोलनों से अधिक स्थायी और लड़ाकू प्रवृत्ति का था। इस आंदोलन के अधिक उग्र होने के निम्न कारण थे।

i) निज़ाम सरकार विद्रोही किसानों को दबाने में सर्वथा असफल रही।

ii) आंदोलन के नेता विद्रोही किसानों की सभी श्रेणियों सर्वहारा, निर्धन किसान तथा कुछ मध्यम वर्गीय किसानों को उनके दमनकर्त्ताओं के विरुद्ध लम्बे सशस्त्र संघर्ष में लामन्द करने में सफल रहे। तेलंगाना में एक ओर जागीरदारों तथा इजारेदारों **और दूसरी ओर** देशमुखों एवं पटेल और पटवारियों द्वारा नियंत्रित एवं शोषित खेतिहर परिस्थितियों के मुद्दे को लेकर महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। जागीरदार और इजारेदार ज़मींदारों की भांति विशिष्ट ज़मीन (सर्फेखास) में मध्यस्थ थे लेकिन व्यवहार में वे ज़मीन के मालिक के रूप में कार्य करते थे। इसके तहत वे अपने अधिकार से परे निम्न कार्य करते थे।

- काश्तकारी की नीलामी
- काश्तकारों से किराए की उच्च दरें वसूल करना
- कच्चे काश्तकारों को समय-समय पर बेदखल कर देना
- लोगों से मुफ़्त मज़दूरी (वेटी) तथा मुफ़्त सेवाएं (वेतीचाकरी) प्राप्त करना।

रियासत अधिकृत भूमि (दीवानी) की स्थिति में भी कुछ विशेष अंतर नहीं था। दीवानी में पट्टेदारों अथवा तथाकथित किसान क्षेत्रपतियों के बीच से एक नया ज़मींदार वर्ग उभरने लगा। पूर्व में यह वर्ग राजस्व वसूली के ठेकेदार (देशमुख) और कर संग्राहक (पटेल पटवारी) थे जिनकी नौकरियां 1860 के दशक में जब निज़ाम सरकार द्वारा काश्तकारों से सीधे कर वसूल करना शुरू किया गया तो समाप्त हो गयी थीं। इन्हें मुआवज़े के रूप में काफी ज़मीने दी गयी थीं। राजस्व कर्मचारियों के रूप में ज़मीन संबंधी जानकारी एवं प्रभाव के प्रयोग, सर्वेक्षण रिकार्डों में धोखा धड़ी तथा बन्दोबस्त क्रियान्वयन में हस्तक्षेप द्वारा देशमुखों और पटेल-पटवारियों ने जमकर ज़मीन हथिया ली। एक बार इतनी अधिक ज़मीन होने तथा उच्च दरों पर इन ज़मीनों को किराए पर उठाना आरंभ कर देने के बाद वे काफी शक्तिशाली और प्रभावशाली हो गए और ग्रामीण समाज में उनका प्रभुत्व हो गया। गांवों में सभी किसानों से वे वेती और वेतीचाकरी की मांग करने लगे। साथ-साथ उनमें ज़मीन के लिए अतृप्त लालसा बनी रही जो कि यदि अब धोखा धड़ी के द्वारा संतुष्ट नहीं हो सकती थी तो वे उसे सभी प्रकार के दबाव और दमन तथा बलपूर्वक संतुष्ट करना चाहते थे। आर्थिक संकट (1930 के दशक के आरंभ में) तथा मंहगाई (1940 के दशक के आरंभ में) के काल में देशमुखों को लाभ पहुँचा क्योंकि निर्धनता से ग्रस्त किसानों ने जब भी कठिनाईयों से निपटने के लिए इनसे ऋण लिया, ऋण का भुगतान न कर पाने के कारण उन्हें अपनी ज़मीन इन देशमुखों को देनी पड़ी। 1940 के दशक तक देखमुख और पटवारी इतनी ज़मीन लूट चुके थे कि कुछ जिलों में क्षेत्र की 60 से 70 प्रतिशत ज़मीन पर इनका कब्ज़ा था और इनमें से कुछ के पास तो व्यंक्तिगत रूप में 100,000 एकड़ अथवा उससे भी अधिक ज़मीन थी। तेलंगाना के किसानों का विद्रोह इसी ज़मीन की लूट, गैर कानूनी लेवी, वेती तथा वेतीचाकरी लेने के कारण था जो समस्त जनता को समान रूप से प्रभावित कर रहा था। इस असंतोष को कम्युनिस्टों, आंध्र महासभा के गठन तथा नालगोंडा, वारंगल और करीम नगर जिलों में वेती, वेतीचाकरी तथा गैर कानूनी लेवी के विरुद्ध प्रदर्शनों की एक पूरी शृंखला आयोजित कर के मूर्त रूप दे दिया गया। 1945 तक ज़मीदारों की ज़्यादतियों का विरोध किसानों को बलपूर्वक बेदखल किए जाने के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध बन गया। अपने कानूनी विरोधों और शांतिपूर्ण मोर्चों पर ज़मींदारों के गुंडों और ज़मींदारों की समर्थक रियासती पुलिस द्वारा कुठाराघात होते देख कर तेलंगाना, विशेषकर नालगोंडा के किसानों को हथियार उठाने पड़े यद्यपि 1946 के आरंभ से ही किसानों और ज़मींदारों के गुंडों के बीच छिट पुट झड़पें होती रहीं थी। लेकिन असली लड़ाई 4 जुलाई 1946 को शुरू हुई जबकि जनगांव (नालगोंडा) के विसूनरी देशमुख के सशस्त्र आदमियों ने किसानों की प्रदर्शनकारी भीड़ पर गोली चलाकर डोडी कुमारैया की हत्या कर दी। कुमारैया की शहादत ने व्यापक किसान संघर्ष का सूत्रपात कर दिया जिसका मुकाबला पुलिस न कर सकी। निज़ाम सरकार ने कम्युनिस्ट पार्टी तथा आंध्र सभा को हैदराबाद रियासत ने गैर

कानूनी घोषित करते हए उभरती हुई किसानों की शक्ति को अपनी पूरी सैनिक शक्ति लगाकर दबाना शुरू कर दिया। खून, खराबे, यातनाओं और बर्बादी के परिणामस्वरूप 1947 के आरंभ में ऐसा लगा कि सेना विद्रोहियों पर काबू पा लेगी लेकिन 1947 के मध्य में विद्रोह ने व्यापक रूप धारण कर लिया उसके उपरांत इस संघर्ष के पूर्ण गुरिल्ला युद्ध का रूप ले लेने के बाद विद्रोहियों पर सेना के काबू पाने का भ्रम जाता रहा तेलंगाना किसानों का यह सशस्त्र संघर्ष 1951 तक निरंतर चलता रहा। इसका महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि अपने चरमोत्कर्ष पर इस आंदोलन ने लगभग 300 गांवों और 16000 वर्ग मील के क्षेत्र जिसकी जनसंख्या लगभग 38 लाख थी पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। प्रभाव क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह आंदोलन बुनियादी तौर पर स्वतंत्र भारत के इतिहास का अंग है।

बोध प्रश्न 3

1 नौसेना (रॉयल इन्डियन नेवी) के भारतीय सैनिकों द्वारा प्रस्तुत की गयी विभिन्न मांगों का उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

2 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष टकराव का बुनियादी अंतर क्या था?

....

....

....

....

....

3 निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाएं।

i) आज़ाद हिन्द फ़ौज मुकद्मों से सम्बन्धित संघर्ष ने हिन्दू और मुसलमानों को बांट दिया। ☐

ii) बिहार का किसान आंदोलन काश्तकारी के मुद्दे से संबंधित था। ☐

iii) ट्रैवनकोर संघर्ष पूर्णतयः खेतिहर था। ☐

iv) तेलंगाना आंदोलन स्वतंत्रता के बाद तक भी चलता रहा। ☐

v) पटेल और जिन्ना ने भारतीय नौ सैनिकों को आत्मसमर्पण करने को कहा। ☐

vi) तेलंगाना आंदोलन का सूत्रपात कम्युनिस्टों ने किया। ☐

35.5 सारांश

1945 से 1947 के बीच की जनकार्रवाइयों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापक स्तर पर आम जनता में उपनिवेश विरोधी जागरूकता मौजूद थी जो कि किसी भी नव उपनिवेशवादी षडयंत्र का मुक़ाबला करने के लिए आवश्यक आंतरिक शक्ति थी। इन

जन कार्रवाइयों ने ऐसे समय में जबकि साम्प्रदायिकता का जहर फैलाया जा रहा था और फूट डालने की कोशिश की जा रही थी, यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जनता में अपने मतभेदों से ऊपर उठकर कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष करने की अद्‌भुत क्षमता है। भारत के निराशपूर्ण माहौल में आशा की यही एक किरण थी। मुस्लिम लीग के नेता अंग्रेज़ों की उंगलियों पर नाच रहे थे और अपनी मांगों के बीच इतने खो चुके थे कि इन सकारात्मक पहलुओं पर नज़र डालने की उन्हें फुरसत ही नहीं थी। यह अब राष्ट्रवादियों, विशेषकर उन राष्ट्रवादियों को जो जीवन भर जन साधारण की शक्ति और एकीकृत भारत के लिए संघर्षरत रहे, का काम था कि वह इन वर्षों में आशा की जो किरण दिखाई थी उसके सहारे आगे बढ़ते। लेकिन अब तक वे ऐसी परिस्थिति में पहुंच चुके थे कि वह किसी न किसी रूप में एक समझौते पर पहुंचने के लिए व्याकुल थे और धर्म के आधार पर भारत के विभाजन की संभावना के सम्मुख भी न तो उनमें इतनी शक्ति थी और न ही इच्छा कि वह किसी बड़े संघर्ष की तैयारी करते। परिणामस्वरूप कांग्रेस ने 1945-47 के दौरान के अधिकतर जन संघर्षों की उपेक्षा करनी शुरू कर दी और यदि उन्हें इन संघर्षों में टकरावपूर्ण परिस्थिति की कोई संभावना नज़र आई तो उसमें व्यवधान डालने तथा उनकी भर्त्सना करने में भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। शांतिपूर्ण ढंग से सत्ता के हस्तांतरण के प्रति अपनी तीव्र इच्छा के कारण वे इस संभावना को भी न देख पाए कि यदि किसी प्रकार देश का विभाजन होता है तो राष्ट्रवादी अपने हिस्से में नव उपनिवेशवादी षडयंत्रों से सुरक्षित रहने का कितना भी प्रयास कर लें, बाकी के आधे हिस्से में इन षड्‌यंत्रों के विरुद्ध वे शक्तिहीन होंगे क्योंकि इस समय तक उपनिवेशवाद ने इस उपमहाद्वीप से अपनी आशाएं छोड़ी नहीं थी।

35.6 शब्दावली

प्रत्यक्ष कार्रवाई : 16 अगस्त, 1946 को मुहम्मद अली जिन्ना की मुसलमानों से अपील। यह अपनी मुस्लिम लीग के बिना ही अंतरिम सरकार गठित करने के अंग्रेज़ी सरकार के निर्णय के बाद की गयी और इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए।

35.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i)✓ ii)✓ iii) × iv) × v) ✓ vi) ✓

2 आप के उत्तर में अंग्रेज़ों द्वारा मुस्लिम लीग को मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था मानना, कांग्रेस को मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का अधिकार न देना, भारतीयों के बीच किसी प्रकार के संवैधानिक समझौते की संभावना न पैदा होने देना तथा मुस्लिम लीग को विभिन्न तरीकों से समर्थन देना और उन्हें प्रोत्साहित करना आदि शामिल होना चाहिए। देखें उपभाग 35.2.3

3 पाकिस्तान की संभावना विभिन्न वर्गों के लिए भिन्न अर्थ रखती थी। मुसलमानों के मध्यम वर्ग के लिए नौकरियों की निश्चितता, व्यापारी वर्ग के लिए हिन्दू व्यापारियों के साथ स्पर्धा में व्यापार हितों की सुरक्षा तथा पंजाब और बंगाल के मुस्लिम किसानों के लिए हिन्दू बनियों और ज़मींदारों के शोषण से मुक्ति था।

बोध प्रश्न 2

1 i)× ii)× iii)✓ iv)×

2 आप विश्व युद्ध के बाद की बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति, सरकार की कांग्रेस के प्रति बदली हुई नीति, जिसमें मुख्यत: कैदी कांग्रेस नेताओं के साथ बातचीत आरंभ करने की इच्छा थी जिससे कि नये सिरे से कोई संघर्ष न हो सके, का उल्लेख करें। देखें भाग 35.3

3 लेबर पार्टी की विजय से भारतीय राष्ट्रवादियों में अंग्रेज़ी सरकार द्वारा उनकी मांग पूरी किए जाने की आशाएं जगीं। विस्तृत जानकारी के लिए देखें उपभाग 35.3.2

बोध प्रश्न 3

1 इसके अंतर्गत आम राष्ट्रीय मांगें जैसे आज़ाद हिन्द फ़ौज के कैदियों की रिहाई, राजनीतिक कैदियों की रिहाई और भारत-चीन तथा जावा से भारतीय सैन्य टुकड़ियों की वापसी के अतिरिक्त वेतन, अच्छे बर्ताव तथा समान वेतन जैसी विशिष्ट मांगें शामिल थीं।

2 प्रत्यक्ष टकराव की नीति अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध लक्षित थी जबकि दूसरी ओर अप्रत्यक्ष टकराव सीधे सरकार के विरुद्ध न होकर उनके स्वदेशी प्रतिनिधियों जैसे ज़मींदारों और रजवाड़ों आदि के विरुद्ध लक्षित था। फिर भी इन अप्रत्यक्ष टकरावों ने सरकार के विरुद्ध जनता को एकजुट करने में काफ़ी मदद की।

3 i) ✗ ii) ✓ iii) ✗ iv) ✓ v) ✓ vi) ✓